बाजार दर्शन

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1. लेखक ने बाजार की असली कृतार्थता बताई है –

(अ) अभाव जाग्रत करना
(ब) आवश्यकता के समय काम आना।
(स) अधिकाधिक धन कमाना
(द) अनाप-शनाप सामान खरीदना।

उत्तर: (ब)

प्रश्न 2. भगत जी ने कभी चूरन बेचकर छः आने से ज्यादा नहीं कमाए क्योंकि

(अ) उनका चूरन और अधिक नहीं बिकता था।
(ब) वे आधुनिक मार्केटिंग नहीं जानते थे।
(स) इससे अधिक परिश्रम वे नहीं कर सकते थे।
(द) वे सन्तोषी थे इसलिए अधिक कमाना ही नहीं चाहते थे।

उत्तर: (द)

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. लेखक के अनुसार बाजार का जादू किस राह से काम करता है?

उत्तर: बाजार का जादू आँखों के रास्ते काम करता है। ग्राहक आँखों से सुन्दर चीजों को देखकर आकर्षित होकर, उनको खरीदता है।

प्रश्न 2. लेखक ने किस समय बाजार में जाने की सलाह दी है?

उत्तर: लेखक की सलाह है कि जब मन खाली हो अर्थात् आपको अपनी जरूरतों का सही पता न हो तो उस समय बाजार नहीं जाना चाहिए।

प्रश्न 3. चूरन वाले भगत जी का जीवन हमें क्या शिक्षा देता है?

उत्तर: चूरन वाले भगत जी से हमको जरूरत से ज्यादा चीजें न खरीदने तथा आवश्यकता से ज्यादा धनोपार्जन न करने की शिक्षा मिलती है।

प्रश्न 4. पैसे की 'परचेज पावर' से आप क्या समझते हैं?

उत्तर: पैसे देकर चीजें बाजार से खरीदी जाती हैं। जितना ज्यादा पैसा उतनी ही ज्यादा चीजें यही पैसे की परचेज पावर है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. जो लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं, उनसे बाजार पर क्या प्रतिकूल असर पड़ता है?

उत्तर: बाजार का उद्देश्य है-लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना । जो लोग (विक्रेता और क्रेता) बाजार के इस उद्देश्य में बाधा डालते हैं वे बाजार को अनुचित धनोपार्जन तथा शोषण का साधन बना देते हैं। वहाँ वे दोनों एक-दूसरे को ठगने तथा धोखा देने के प्रयास करते हैं। आपसी सद्भाव को नष्ट करते हैं।

प्रश्न 2. हमें बाजार से वस्तुएँ खरीदते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर: हमें ध्यान रखना चाहिए कि बाजार जाने से पहले यह अच्छी तरह पता कर लें कि हमारी जरूरत क्या है? हमको बाजार में अपनी क्रय शक्ति का (परचेजिंग पावर) का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए तथा जरूरत से ज्यादा चीजें नहीं खरीदनी चाहिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. बाजार दर्शन' निबन्ध में लेखक ने बाजार का सही उपयोग करने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखने पर बल दिया है? आप बाजार का सही उपयोग किस प्रकार करेंगे?

उत्तर: लेखक ने 'बाजार दर्शन' पाठ में बाजार का सही उपयोग करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखने के लिए कहा हैं।

1. हमें ग्राहक के रूप में बाजार जाने पर यह ठीक-ठीक पता होना चाहिए कि हमारी आवश्यकता की चीजें क्या-क्या हैं?
2. हमको बाजार में प्रदर्शित चीजों के आकर्षण में नहीं फंसना चाहिए।
3. हमें अपनी 'परचेजिंग पावर' का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए तथा अनावश्यक खरीदारी नहीं करनी चाहिए।
4. हमें अपनी जरूरत की चीजें ही खरीदनी चाहिए।
5. बाजार जाते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि जरूरी चीजों को खरीदने लायक पैसा हमारी जेब में हो।

6. बाजार में क्रेता और विक्रेता में सौहार्द्र होना चाहिए। उनको एक-दूसरे को धोखा देने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
7. विक्रेता को भी ग्राहक की आवश्यकता की पूर्ति करनी चाहिए तथा उसका शोषण नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा विक्रेता तथा क्रेता दोनों का मार्गदर्शन करने वाली हैं। मैं भी बाजार से जरूरत की चीजों को खरीदने के लिए जाऊँगा किन्तु वहाँ से अनावश्यक चीजें नहीं खरीदूंगा और अपने धन का दम्भपूर्ण प्रदर्शन भी नहीं करूंगा।

प्रश्न 2. उपभोक्तावाद से प्रभावित समाज में उपभोक्तओं को शोषण से बचाने के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर: वर्तमान विश्व की आर्थिक व्यवस्था उपभोक्तावाद से प्रभावित है। आजकल की सभ्यता में विकास के लिए अधिक-सेअधिक चीजों का प्रयोग करना आवश्यक माना जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात तथा भारतीय महापुरुष गाँधी जी का सिद्धान्त था कि कम-से-कम वस्तुओं का प्रयोग करो।

इसके विपरीत आज माना जाता है कि अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाने से ही सभ्यता विकसित होती है। वस्तुओं का प्रयोग उपभोग तथा प्रयोगकर्ता उपभोक्ता कहलाता है। यदि गहराई से विचार किया जाय तो उपभोक्ता का शोषण करके अपनी पूँजी को बढ़ाना ही उपभोक्तावाद है।

उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के लिए मैं निम्नलिखित सुझाव देना चाहूँगा –

1. आवश्यकताओं को सीमित रखना चाहिए।
2. फिजूलखर्ची से बचना चाहिए तथा अपनी क्रय शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।
3. हमको अपनी आवश्यकताओं का सही ज्ञान होना चाहिए तथा बाजार से अनावश्यक वस्तुएँ नहीं खरीदनी चाहिए।
4. हमें आत्मसंयमी होना चाहिए तथा धन का प्रदर्शन अपने घमण्ड की सन्तुष्टि के लिए नहीं करना चाहिए।
5. हमें चीजें उत्पादक से सीधी खरीदनी चाहिए बीच में बाजार को नहीं आने देना चाहिए।
6. सरकार को भी ऐसा कानून बनाना चाहिए, कि उपभोक्ताओं का शोषण रोका जा सके।
7. शोषण से बचने के दो रास्ते हैं, एक है-आत्मसंयम अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना तथा दूसरा बाह्य नियन्त्रण अर्थात् शासन द्वारा उपभोक्ताओं की शोषण से रक्षा करना।

भाषा सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न 1. तिरस्कार शब्द तिरः + कार से बना है। यह विसर्ग सन्धि है। विसर्ग सन्धि के निम्न शब्दों का सन्धि विच्छेद कीजिए –

भास्कर, पुरस्कार, निस्सार, निर्बल, निर्जन, वृहस्पति।

उत्तर: भोः + कर, पुरः + कार, निः + सार, निः + बल, निः + जन, वृहः + पति ।

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मूल में एक ही तत्व की महिमा सविशेष है। वह तत्व है –

(क) पति
(ख) पत्नी
(ग) मनीबैग
(घ) बाजार।

2. 'परिमित' का विलोम शब्द है –

(क) सीमित
(ख) अतुलित
(ग) संयमित
(घ) नियमित

3. 'बाजार में एक जादू है।' यहाँ 'जादू' शब्द का अर्थ है –

(क) सौन्दर्य
(ख) आकर्षण
(ग) दिखावा
(घ) सन्तुष्टि।

4. भगत जी का कार्य है –

(क) नमक बेचना
(ख) चने बेचना

(ग) आइसक्रीम बेचना
(घ) चूरन बेचना

5. क्यों न मैं मोटर वालों के यहाँ पैदा हुआ? इस वाक्य में है –

(क) व्यंग्य शक्ति
(ख) क्रय शक्ति
(ग) विक्रय शक्ति
(घ) मनुष्य की अशक्ति

उत्तर:

1. (ग)
2. (ख)
3. (ख)
4. (घ)
5. (क)

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. बाजार से लौटकर मित्र ने लेखक को ढेर सारा सामान खरीदने का क्या कारण बताया?

उत्तर: मित्र ने लेखक को बताया कि ढेर-सारा सामान उसने अपनी पत्नी के साथ होने और उसके आग्रह पर खरीदा था।

प्रश्न 2. फिजूलखर्ची का उत्तरदायी कौन है?

उत्तर: फिजूलखर्ची का उत्तरदायी कोई एक व्यक्ति नहीं है। यह पति, पत्नी तथा पति के भारी मनीबैग के कारण होती है।

प्रश्न 3. 'पर्चेजिंग पावर' का क्या तात्पर्य है?

उत्तर: बाजार में चीजें खरीदते समय उनके बदले पैसा दिया जाता है। धन द्वारा चीजें खरीदने की इस शक्ति को ही 'पर्चेजिंग' पावर कहते हैं।

प्रश्न 4. वह पैसे को जोड़ते जाते हैं, जोड़ते जाते हैं-ऐसे मनुष्यों को आप क्या कहेंगे?

उत्तर: ऐसे मनुष्यों को जो पैसा खर्च करने में नहीं जोड़ने में खुश रहते हैं हम संयमी कहेंगे। हम उनको मितव्ययी भी कह सकते

प्रश्न 5. 'असन्तोष, तृष्णा और ईष्र्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए बेकार बना डाल सकता है-कौन ऐसा कर सकता है?

उत्तर: बाजार का प्रबल आकर्षण, बाजार का जादू ऐसा कर सकता है।

प्रश्न 6. बाजार का आमन्त्रण मूक क्यों होता है?

उत्तर: बाजार किसी को चीजें खरीदने के लिए बुलाता नहीं है।

वहाँ सजी हुई चीजें देखकर मनुष्य उनकी ओर आकर्षित होता है। इसी को बाजार को मूक आमंत्रण कहते हैं।

प्रश्न 7. शून्य होने का अधिकार किसको है तथा क्यों?

उत्तर: शून्य होने का अधिकार परमात्मा को है। परमात्मा स्वयं सम्पूर्ण तथा रागद्वेष से मुक्त है। वह इच्छाशून्य हो सकता है।

प्रश्न 8. भगत जी को क्या प्राप्त है जो बड़े-बड़े समझदार लोगों को प्राप्त नहीं है?

उत्तर: भगत जी को सन्तोष, लोभ से मुक्ति तथा उचित-अनुचित अन्तर का विवेक है। ये गुण बड़े-बड़े समझदार लोगों में भी दुर्लभ होते हैं।

प्रश्न 9. बाजार की सार्थकता का क्या तात्पर्य है?

उत्तर: लोगों की जरूरत का सामान उनको उपलब्ध कराना ही बाजार की सार्थकता है।

प्रश्न 10. बाजार के बाजारूपन से क्या आशय है?

उत्तर: लोगों को विज्ञापनों से प्रभावित कर अनावश्यक चीजें खरीदने को प्रेरित करना बाजार का बाजारूपन है।

प्रश्न 11. लेखक ने क्यों कहा है कि मैं विद्वान नहीं हूँ जो शब्दों पर अटकें?

उत्तर: तृष्णा, लोभ, लालच, संग्रह की प्रवृत्ति आदि दुर्गुण मनुष्य में फिजूलखर्ची को बढ़ाते हैं। इस विषय में सभी समान हैं। उनके सूक्ष्म अन्तर पर ध्यान देना लेखक जरूरी नहीं समझते।

प्रश्न 12. बाजार का जादू आँख की राह काम कैसे करता है?

उत्तर: ग्राहक बाजार में चीजों को देखकर ही उनको खरीदने के लिए आकर्षित होता है। इस तरह बाजार आँख की राहे काम करता है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'बाजार दर्शन' जैनेन्द्र जी का कैसा निबन्ध है?

उत्तर: बाजार दर्शन' जैनेन्द्र का विचारप्रधान निबन्ध है। विचार प्रधान होने के साथ ही व्यंग्य का भी पुट है। उसमें बाजार की उपयोगिता बताई गई है। उपभोक्तावादी युग में बाजार का रूप बदल चुका है। वह प्रदर्शन और ठगी का जाल बन चुका है। वह उपभोक्ता के शोषण का माध्यम बन गया है।

प्रश्न 2. "यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं स्त्रीत्व का प्रश्न है।"–लेखक ने ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर: लेखक के मित्र मामूली चीज लेने बाजार गए थे। लौटे तो उनके साथ अनेक बण्डल थे। उन्होंने बताया कि इतना अधिक सामान उन्होंने अपनी पत्नी के कारण खरीदा है। लेखक ने माना है कि वस्तुओं के संग्रह का स्वभाव स्त्रियों का होता है। आदिकाल से इस विषय में स्त्री की ही प्रमुखता रही है। गृहस्थी का काम सदा से स्त्री ही करती आई है। संग्रह की भावना स्त्री में स्वाभाविक रूप से होती

प्रश्न 3. "स्त्री माया न जोड़े तो क्या मैं जोड़ें? इस वाक्य से 'माया' का क्या अर्थ है? स्त्री द्वारा माया जोड़ना प्रकृति प्रदत्त नहीं, परिस्थितिवश है। वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जो सभी को माया जोड़ने को विवश करती हैं?

उत्तर: इस वाक्य में 'माया' का अर्थ है गृहोपयोगी वस्तुएँ। घर के लिए जरूरी चीजों का ज्ञान स्त्री को पुरुष से अधिक होता है। अवसर मिलने पर वह उनको खरीद लेती है। भविष्य में चीजों के महँगी होने के भय से भी वह चीजें खरीद लेती है।

वह सोचती है कि जरूरत पड़ने पर उसके घर में किसी चीज की कमी न हो। वह उसको पड़ोस से माँगनी न पड़े। इससे उसका स्वाभिमान आहत होता है। यह परिस्थिति के प्रति स्त्री की प्रकृतिगत सजगता है।

प्रश्न 4. पैसा पावर है। उसकी यह पावर कब प्रमाणित होती है?

अथवा

'पर्चेजिंग पावर के प्रयोग का रस' क्या है?

उत्तर: पैसा अर्थात् धन में क्रय शक्ति होती है। बाजार में पैसा देकर उसके बदले में कोई चीज खरीदी जा सकती है। पास में धन न हो, तो कुछ भी खरीदना सम्भव नहीं है। जितना जेब में पैसा होगा उतनी ही चीजें खरीदी जा सकेंगी। बैंक का हिसाब देखकर पैसे की शक्ति देखी जा सकती है।

मकान-कोठी आदि अचल सम्पत्ति बिना देखे ही दिखाई देती है। पैसे की पावर का रस या आनन्द उसके प्रयोग में है। यदि आसपास सामान जमा नहीं है तो पैसे के पावर का कोई प्रमाण नहीं है।

प्रश्न 5. "बाजार में एक जादू है"-से क्या तात्पर्य है?

उत्तर: "बाजार में एक जादू है।"—यह कहने का तात्पर्य यह है कि बाजार ग्राहक को आकर्षित करता है। वहाँ सुन्दर ढंग से सजी चीजों को देखकर मनुष्य उनको खरीदने के लिए मजबूर हो जाता है। यह जादू उन पर प्रभाव डालता है जिनको अपनी आवश्यकताओं का पता नहीं होता और जेब में खूब पैसा होता है।

बाजार जाकर वे जो अच्छा लगता है उसे खरीद लेते हैं। यह नहीं देखते कि उनको उसकी जरूरत है या नहीं। वे फिजूलखर्ची करते हैं। इस जादू के उतरने पर उनको पता चलता है कि ज्यादा चीजें सुख नहीं देतीं बल्कि उसमें बाधा डालती हैं।

प्रश्न 6. बाजार को "शैतान का जाल' क्यों कहा गया है?

अथवा

बाजार के आकर्षण का क्या दुष्प्रभाव होता है?

उत्तर: जिस प्रकार चतुर शिकारी जाल फैलाकर अपने शिकार को उसमें फंसाता है उसी प्रकार सुसज्जित बाजार ग्राहक को आकर्षित करता है। यह मूक आकर्षण मनुष्य के मन में चाह अथवा अभाव उत्पन्न करता है। व्यक्ति सोचता है-यहाँ अपरिमित है, उसके पास बहुत सीमित है। अपनी जरूरतों का ठीक से पता न होने से मनुष्य इस आकर्षण में हँसकर अनावश्यक चीजें खरीद लेता है।

इच्छाओं के वेग से वह व्याकुल हो उठता है। उसका मन तृष्णा, असन्तोष और ईर्ष्या से भर उठता है। उसकी व्याकुलता उसको पागल बना देती है तथा वह सदा के लिए बेकार हो जाता है।

प्रश्न 7. 'बाजार जाओ तो मन खाली न हो'-लेखक के इस कथन का क्या आशय है?

अथवा

बाजार के जादू की जकड़ से बचने का क्या उपाय है?

उत्तर: बाजार जाते समय मन खाली नहीं होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को ठीक तरह पता होना चाहिए कि उसको किस चीज की आवश्यकता है। बाजार से उपयोगी चीजें खरीदने में ही बाजार की सार्थकता है।

इससे मनुष्य बाजार के आकर्षण में पड़कर अनावश्यक चीजें नहीं खरीदता । इस तरह वह फिजूलखर्ची से और बाजार के जादू की जकड़ से बचता है। इससे चीजों की अधि किता के कारण उत्पन्न असुविधा से भी उसकी रक्षा होती है।

प्रश्न 8. बाजार के दो पक्ष कौन-से हैं? उनकी विशेषताएँ क्या हैं?

उत्तर: बाजार के दो पक्ष होते हैं–पहला पक्ष है विक्रेता तथा दूसरा पक्ष है क्रेता या ग्राहक । विक्रेता दो

प्रकार के होते हैं। एक वह जो उतना धन कमाना चाहता है, जो उसके लिए जरूरी है। इसमें चूरनवाले भगत जी आते हैं। दूसरे प्रकार के विक्रेता वे होते हैं जो ग्राहक को ललचाकर ठगते हैं और उसका शोषण करते हैं। अधिकांश विक्रेता ऐसे ही होते हैं।

ग्राहक या क्रेता तीन प्रकार के होते हैं-एक, वह जो अपनी जरूरतों को ठीक से पता करके बाजार से उपयोगी चीजें ही खरीदते हैं। दो, वह जो नहीं जानते कि उनको किस चीज की जरूरत है। वे अपने धन-बल का प्रदर्शन कर अनावश्यक चीजें खरीदते हैं।

तीन, वे जो बाजार में अनेक चीजें देखकर भ्रमित हो जाते हैं और अनिश्चय के कारण बिना कुछ खरीदे खाली हाथ लौट आते हैं।

प्रश्न 9. बाजारूपन का क्या तात्पर्य है? किस प्रकार के व्यक्ति बाजार को बाजारूपन से बचाकर उसे सार्थकता प्रदान करते हैं?

उत्तर: बाजारूपन का तात्पर्य है-बाजार नामक संस्था को लक्ष्य भ्रष्ट करना। बाजार का गठन समाज की आवश्यकताओं को सुचारु ढंग से पूर्ति करने के लिए होता है। इसी में बाजार की सार्थकता है। कुछ लोग जो अपनी आवश्यकताओं का सही ज्ञान नहीं रखते, वे बाजार में अपनी 'पर्चेजिंग पावर' का अनुचित प्रदर्शन करते हैं और अनाप-शनाप अनावश्यक चीजें खरीदते हैं।

इससे बाजार में जो विकार उत्पन्न होता है उसी को बाजारूपन कहते हैं। अपनी आवश्यकता को ठीक तरह जानकर बाजार से केवल उपयोगी चीजों को खरीदने वाले ग्राहक ही उसको बाजारूपन से बचाते हैं तथा सार्थकता प्रदान करते हैं।

प्रश्न 10. 'बाजार दर्शन' नामक निबन्ध में किस प्रकार के ग्राहकों के बारे में बताया गया है? आप स्वयं को किस श्रेणी का ग्राहक मानते/मानती हैं?

उत्तर: 'बाजार दर्शन' निबन्ध में दो प्रकार के ग्राहकों के बारे में बताया गया है। एक प्रकार के वे ग्राहक होते हैं, जिनको पता नहीं होता है कि उनको किस चीज की जरूरत है। इसके कारण वे अनावश्यक चीजें बाजार से खरीदते रहते हैं। दूसरी श्रेणी के ग्राहक अपनी आवश्यकता के बारे में अच्छी तरह से जानते हैं।

वे आवश्यक चीज को ही बाजार से खरीदते हैं और धन की बरबादी से बचते हैं। मैं स्वयं को दूसरी श्रेणी का सजग ग्राहक मानता हूँ। मैं अनाप-शानप चीजें नहीं खरीदता। मैं अपने पैसे का सदुपयोग करता हूँ तथा फिजूलखर्ची से बचता हूँ।

प्रश्न 11. 'बाजार दर्शन' पाठ में बताया गया है कि कभी-कभी आवश्यकता ही शोषण का रूप धारण कर लेती है। क्या आप इस विचार से सहमत हैं?

उत्तर: कभी-कभी बाजार में आवश्यकता ही शोषण का रूप धारण कर लेती हैं। यह कथन सही है। मैं जानता हूँ कि बाजार में चीजों का मूल्य माँग और पूर्ति के आधार पर निश्चित होता है। माँग कम और पूर्ति अधिक हो तो चीज सस्ती बिकती है तथा माँग अधिक और पूर्ति कम होने पर वस्तुएँ अधिक कीमत पर

बिकती हैं। चालाक विक्रेता इसका लाभ उठाते हैं। वे माल को छिपाकर उसकी बनावटी कमी दिखाते हैं तथा इस प्रकार उसकी पूर्ति की तुलना में लोगों की ज्यादा आवश्यकता दिखाकर माल की उपलब्धता कम दिखा देते हैं। इस तरह कभी-कभी आवश्यकता शोषण का रूप धारण कर लेती है। क्योंकि कीमतें बनावटी होती हैं तथा अधिक लाभ कमाने के लिए ऐसा किया जाता है।

प्रश्न 12. आप बाजार की विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों से परिचित होंगे। मॉल की संस्कृति, सामान्य बाजार की संस्कृति, हाट की संस्कृति में आपको क्या अन्तर लगता है?

उत्तर: मॉल की संस्कृति उच्चवर्गीय विदेशी संस्कृति है। सामान्य बाजार तथा हाट की संस्कृति स्वदेशी है। मॉल में चीजों का शानदार तथा चकाचौंध वाला प्रदर्शन होता है। वहाँ जाने वाले धनवान होते हैं। वे वहाँ अपनी क्रय शक्ति का दम्भपूर्ण प्रदर्शन करके अनाप-शनाप सामान खरीदते हैं। सामान्य बाजार तथा हाट में साधारण तथा गरीब लोग जाते हैं। उनके पास ज्यादा पैसा नहीं होता।

वे केवल जरूरी चीजें ही वहाँ से खरीदते हैं। दिनभर मजदूरी करके शाम को आटा-नमक खरीदने के लिए तो कोई मॉल में जायेगा नहीं। सामान्य बाजार साधारण जनता की जरूरतें पूरी करता है। हाट में उत्पादक स्वयं अपना माल लेकर आता है तथा उपभोक्ता से सीधे सम्पर्क करता है। हाट में उपयोगी तथा सस्ती चीजें मिलती हैं। किसान मजदूर अपनी जरूरतें हाट तथा साधारण बाजार से पूरी कर लेते हैं।

प्रश्न 13. 'खाली मन' तथा 'बन्द मन' में बाजार दर्शन के लेखक ने क्या अन्तर बताया है?

उत्तर: बाजार दर्शन पाठ में लेखक ने बताया है कि खाली मन से बाजार नहीं जाना चाहिए। खाली मन का अर्थ है कि अपनी आवश्यकता का स्पष्ट ज्ञान न होना। जब मनुष्य को यह पता न हो कि बाजार से उसको क्या खरीदना है तो उसका मन खाली माना जायेगा।

खाली न होने का अर्थ मन का बन्द होना नहीं है। मन का दमन कर उसमें किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न न होने देना मन को बन्द करना है। हठपूर्वक इच्छाएँ उत्पन्न न होने देने को बन्द मन कहा जायगा।

प्रश्न 14. "बाजार दर्शन' निबन्ध में परमात्मा तथा मनुष्य में क्या अन्तर बताया गया है? मनुष्य को मन को बन्द करने का अधिकार क्यों नहीं है?

उत्तर: 'बाजार दर्शन' निबन्ध के लेखक ने बताया है कि परमात्मा स्वयं पूर्ण है। उसमें कोई इच्छा नहीं है। उसको शून्य कहा गया है। मनुष्य अपूर्ण है। उसके मन में इच्छाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है, मनुष्य की पहचान उसकी अपूर्णता तथा इच्छाओं से परे होना है। उसमें इच्छाएँ रहती हैं। इच्छाओं से मुक्त होकर वह पूर्ण तथा शून्य हो जायेगा। अपनी अपूर्णता के रहते मनुष्य को मन को बन्द अर्थात् इच्छा शून्य करने का अधिकार नहीं है।

प्रश्न 15. चूरन वाले भगत जी पर बाजार का जादू क्यों नहीं चलता? वह बाजार को किस प्रकार सार्थकता प्रदान कर रहे हैं?

उत्तर: भगत जी को अपनी आवश्यकता का स्पष्ट ज्ञान है। वह निर्लोभ तथा सन्तोषी है। बाजार में माल बिछा रहता है किन्तु अपनी जरूरत की चीजें जीरा और नमक खरीदने के बाद बाजार में उनकी रुचि नहीं

रहती। बाजार का आकर्षण उनके लिए शून्य हो जाता है। उन पर बाजार का जादू नहीं चलता, भगत जी चौक बाजार के बड़े-बड़े शानदार स्टोरों को छोड़ते हुए आगे बढ़ते हैं और एक पंसारी की दुकान पर रुकते हैं। वहाँ से वह जीरा और काला नमक खरीदते हैं। अपनी जरूरत की चीजें बाजार से खरीदकर वह बाजार को सार्थकता प्रदान करते हैं। अपनी आवश्यकता पूरी करने के बाद बाजार उनको आकर्षित नहीं कर पाता।

प्रश्न 16. "चौक की चाँदनी दाएँ-बाएँ भूखी-की-भूखी फैली रह जाती है।" कहने का लेखक का तात्पर्य क्या है?

उत्तर: चूरन वाले भगत जी चाँदनी चौक से चूरन बनाने के लिए काला नमक तथा जीरा खरीदते हैं। उनकी आवश्यकता की ये चीजें वहाँ एक पंसारी की दुकान से मिल जाती हैं। बाजार में अनेक फैंसी सामानों के स्टोर हैं। भगत जी उनको देखकर प्रभावित नहीं होते।

वह वहाँ रुकते भी नहीं क्योंकि वहाँ उनकी जरूरत की चीजें नहीं मिलतीं। इस वाक्य में लाक्षणिक शब्द शक्ति का प्रयोग करके लेखक ने यह बताया है कि चाँदनी चौक बाजार के शानदार स्टोर भगत जी को आकर्षित नहीं कर पाते।

प्रश्न 17. जरूरत भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है-भगत जी की इस सन्तुष्ट निस्पृहता की तुलना कबीर की इस सूक्ति से कीजिए –

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआँ बेपरवाह।
जाको कछु नहिं चाहिए सोइ शहंशाह॥

उत्तर: चाह अर्थात् तृष्णा से मुक्त होकर मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है। जिसको संसार की किसी वस्तु की कामना नहीं होती वही सच्चे अर्थ में शहंशाह होता है।

भगत जी को अपनी सीमित आवश्यकता जीरा और नमक से अधिक किसी वस्तु को बाजार से खरीदने की जरूरत नहीं होती। छः आने की कमाई होते ही वह चूरन बेचना बन्द कर देते थे तथा शेष चूरन बच्चों में मुफ्त दे देते हैं।

उनको बाजार में बिकने वाली अन्य चीजों में कोई आकर्षण नहीं प्रतीत होता तथा जरूरत से अधिक धनोपार्जन में भी उनकी रुचि नहीं होती। इस प्रकार बेफिक्र भगत जी कबीर के सच्चे अनुयायी प्रतीत होते हैं।

प्रश्न 18. चाँदनी चौक बाजार में भगत जी के व्यक्तित्व का कौन-सा सशक्त पहलू उभर कर सामने आता है? आपकी दृष्टि में उनका आचरण समाज में शान्ति स्थापित करने में किस तरह सहायक हो सकता है?

उत्तर: भगत जी चूरन बेचते हैं। चूरन बनाने के लिए चाँदनी बाजार से काला नमक और जीरा खरीदते हैं। बाजार में शानदार स्टोरों में फैली चीजें देखकर वे भौंचक्के नहीं होते। वह तुष्ट मन और खुली आँखों के

साथ बाजार जाते हैं। पंसारी की दुकान से नमकजीरा खरीदते हैं। इसके बाद बाजार का आकर्षण उनके लिए शून्य हो जाता है। भगत जी के व्यक्तित्व का यह सशक्त पहलू समाज में शान्ति स्थापित करने में सहायक हो सकता है।

यदि लोग अनावश्यक चीजें खरीदकर उनका संग्रह न करें तो समाज में स्पर्धा नहीं बढ़ेगी। चीजों का बनावटी अभाव उत्पन्न नहीं होगा। विक्रेता को चीजों की बनावटी कमी दिखाकर कीमत बढ़ाने तथा लोगों का शोषण करने का अवसर नहीं मिलेगा और समाज में अनावश्यक अशान्ति नहीं फैलेगी।

प्रश्न 19. पैसे की व्यंग्य शक्ति से क्या आशय है? पैसे की व्यंग्य शक्ति को पराजित करने वाला कौन-सा बल है?

उत्तर: पैसे के अभाव में मनुष्य में हीनता की भावना उत्पन्न होती है। पैसे वाला स्वयं को बड़ा तथा दूसरों से श्रेष्ठ समझता है। पैसे के अभाव में मनुष्य पैसे वालों से ईर्ष्या करता है। वह अपने धनवान सगे-सम्बन्धियों के प्रति भी ईर्ष्यालु हो जाता है। पैसे की शक्ति ही उसकी व्यंग्य शक्ति कहलाती है।

यह व्यंग्य शक्ति अत्यन्त कष्टदायक होती है। इसको परास्त करना साधारण काम नहीं है। पैसे की व्यंग्य शक्ति को चूर-चूर करने वाला बल सांसारिक धन वैभव के बल से ऊँचा है। यह बल उस व्यक्ति में ही होता है, जिसने तृष्णा तथा संग्रह की प्रवृत्ति पर विजय पा ली है। इस बल को धार्मिक, नैतिक तथा आत्मिक बल कहा जाता है। सांसारिक इच्छाओं के आकर्षण से मुक्त मनुष्य में ही यह बल होता

प्रश्न 20. "ऐसे बाजार मानवता के लिए बिडम्बना हैं।" लेखक ने किस प्रकार के बाजार को मानवता के लिए विडम्बना कहा है?

उत्तर: समाज की आवश्यकताओं की उचित ढंग से पूर्ति करने में ही बाजार की उपयोगिता है। ऐसा करके ही बाजार सार्थक होता है। जो बाजार अपनी सार्थकता त्यागकर ग्राहक के साथ छल-कपट पूर्ण आचरण करता है, वह बाजार होने का महत्त्व खो देता है।

जहाँ भाईचारा भूलकर क्रेता और विक्रेता एक-दूसरे को ठगने में लगे रहते हैं, जहाँ उनके बीच का विश्वास नष्ट हो जाता है। वह बाजार, बाजार होने का भाव पूरा नहीं करता। जहाँ धनवान लोग अपनी क्रय शक्ति का प्रदर्शन कर बाजार को शैतानी शक्ति और व्यंग्य शक्ति प्रदान करते हैं, वह बाजार मानवता के लिए दुर्भाग्यपूर्ण बन जाता है। वह मानवता के लिए बिडम्बना सिद्ध होता है।

प्रश्न 21. 'किश्त क्रय पद्धति' में आपको बाजार का कौन-सा रूप दिखाई देता है? क्या यह पद्धति ग्राहक के हित में

उत्तर: किश्तों में माल बेचने की आधुनिक बाजारू व्यवस्था में बाजार का मायावी रूप ही दिखाई देता है। यह उपभोक्तावादी व्यवस्था का ही एक रूप है। इसमें ग्राहक का हित कदापि नहीं है। हाँ, ग्राहक के हित का शोषण अवश्य है। यह छद्म शोषण है, जिसकी जेब में पैसा नहीं है, उसे भी इस पद्धति द्वारा अनावश्यक वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है।

इससे ग्राहक को ऋणग्रस्त होकर हानि उठानी पड़ती है। इसका उद्देश्य ग्राहक का हित नहीं है। इसके

द्वारा उत्पादक को ही लाभ मिलता है। उत्पादक का माल बिक जाता है तथा फाइनेन्सर को ब्याज का लाभ मिलता है। ग्राहक की तो जेब ही कटती है।

प्रश्न 22. दूरदर्शन पर 'जागो ग्राहक जागो' जैसे विज्ञापन दिखाकर ग्राहक को शोषण के विरुद्ध सजग किया जाता है। क्या आप इस तरह के विज्ञापनों से संतुष्ट हैं? इनमें आप क्या सुधार करना चाहेंगे?

उत्तर: 'जागो ग्राहक जागो' ग्राहकों के हित में अच्छा कार्यक्रम है। इसमें लोगों को कुशल और जागरूक ग्राहक बनने के उपाय बताए जाते हैं। लेकिन 'बाजार दर्शन' जैसे निबंध तथा 'जागो ग्राहक जागो' जैसे कार्यक्रम एक पक्षीय हैं। इसमें सारा जोर ग्राहक पर ही है। बाजार में ग्राहक तथा विक्रेता दोनों होते हैं।

केवल ग्राहक को ही सावधान करके बाजार को जन हितैषी नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए दूसरे पक्ष अर्थात विक्रेता को भी सुधारना होगा। भ्रामक विज्ञापन, घटतौली, अपमिश्रण आदि अनेक समस्याएँ हैं। इनका उत्तर दायित्व विक्रेता का ही है। शासन को विक्रेता की भी नकेल कसनी होगी।

प्रश्न 23. प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' के पात्र हामिद तथा उसके दोस्तों का बाजार से क्या सम्बन्ध बनता है। विचार कर उत्तर दीजिए।

उत्तर: ईदगाह' प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी है। हामिद इसका मुख्य पात्र है। वह अपने मित्रों के साथ ईद के मौके पर ईदगाह जाता है। वहाँ हामिद एक चिमटा तथा उसके दोस्त मिठाई और खिलौने खरीदते हैं। चिमटा टिकाऊ और उपयोगी है। मिठाई और खिलौने जल्दी नष्ट हो जाते हैं।

वे चिमटे की तरह उपयोगी नहीं हैं। हामिद को हम 'खाली जेब पर भरे मन वाले ग्राहक' की श्रेणी में रख सकते हैं। उसके पास अधिक पैसा नहीं है, परन्तु उसको अपनी जरूरत की चीज का सही पता है। उसके मित्र' भरी जेब और खाली मन' वाले ग्राहकों की श्रेणी में आते हैं। उनका बाजार से ग्राहक के रूप में यही सम्बन्ध बनता है।

प्रश्न 24. "गड़रिया बगैर कहे ही उसके दिल की बात समझ गया, पर अँगूठी कबूल नहीं की। काली दाढ़ी के बीच पीले दाँतों की हँसी हँसते हुए बोला- मैं कोई राजा नहीं हूँ जो न्याय की कीमत वसूल करूँ? मैंने तो अटका काम निकाल दिया और यह अँगूठी मेरे किस काम की । न यह अँगुलियों में आती है, न तड़े में। मेरी भेड़े भी मेरी तरह आँवार हैं। घास को खाती हैं, पर सोना सँघती तक नहीं। बेकार की वस्तुएँ तुम अमीरों को ही शोभा देती हैं।

विजय दान देथा की कहानी 'दुविधा' के उपर्युक्त अंश को पढ़कर आप देखेंगे/देखेंगी कि चूरन वाले भगत जी की संतुष्ट जीवन-दृष्टि की तरह ही गड़रिए की जीवन-दृष्टि भी है। इससे आपके मन में क्या भाव जागते हैं?

उत्तर: भगत जी संतोषी पुरुष हैं तथा उनकी आवश्यकताएँ सीमित हैं। इसी प्रकार गड़रिया भी संतोषी व लोभरहित तथा कम चीजों से गुजर करने वाला व्यक्ति है। दोनों अपने आप में मस्त हैं। दोनों की अवस्था देखकर मैं सोचता हूँ कि सुख संतोष में है। आवश्यकताओं के पीछे दौड़ने में नहीं है। अधिक धन कमाने

तथा उसके प्रदर्शन में जीवन का वास्तविक आनन्द नहीं है। इच्छाओं पर नियंत्रण के बिना मनुष्य सुखी नहीं रह सकता, मनुष्य को अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह से बचना चाहिए।

प्रश्न 25. "वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा है। वह मायावी शास्त्र है। वह अर्थशास्त्र अनीति-शास्त्र है।" -लेखक के इस कथन पर बाजार के सन्दर्भ में टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: अर्थशास्त्र को बाजार का शास्त्र कहा जाता है क्योंकि वह बाजार का पोषण करता है। वह बताता है कि ग्राहक को आकर्षित करके उसको अनावश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिए किस प्रकार प्रेरित किया जाय तथा किस तरह उसका शोषण किया जाय।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बाजार को ग्राहक का शत्रु बना देती है। ऐसे बाजार में ग्राहक के साथ छल-कपट और शोषणपूर्ण व्यवहार होता है। जनता के लिए बाजार की सार्थकता समाप्त हो जाती है। ऐसे बाजार में शैतानी शक्ति होती है। उसका लक्ष्य समाज की आवश्यकता को पूरा करना नहीं अधिक से अधिक धन कमाना बन जाता है। अत: लेखक ने उसको उल्टी सोच वाला, मायावी तथा अनीति-शास्त्र कहा है।

निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'बाजार दर्शन' पाठ के आधार पर चूरन वाले भगत जी की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उत्तर: 'बाजार दर्शन' पाठ में चूरन वाले भगत जी का उल्लेख एक शांत, संतुष्ट और सुखी मनुष्य के रूप में हुआ है। भगत जी के चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

संतोषी – भगत जी संतोषी हैं। वह अपनी कम कमाई से भी संतुष्ट रहते हैं। छ: आने की कमाई होते ही वह चूरन बेचना बन्द कर देते हैं। वह पच्चीसवाँ पैसा भी स्वीकार नहीं करते। शेष चूरन वह बच्चों में मुफ्त बाँट देते हैं।

लोभहीन – भगत जी को लोभ नहीं है। वह व्यापार को शोषण का जरिया नहीं मानते।

तृष्णा से मुक्त – भगत जी में तृष्णा-भाव नहीं है। उनमें संग्रह की भावना नहीं है। जीवनयापन के लिए जितना पैसा जरूरी है, वह उतना ही कमाना चाहते हैं। भगत जी को जरूरत का ज्ञान है। वह चौक बाजार से जीरा और काला नमक खरीदते हैं। वह एक पंसारी की दुकान से मिल जाता है। शेष बाजार उनको आकर्षित नहीं कर पाता।

सम्माननीय – भगत जी धनवान तथा बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं किन्तु अपने संतोषपूर्ण स्वभाव के कारण वह सभी के सम्माननीय हैं। बाजार में लोग उनका अभिवादन करते हैं।

प्रश्न 2. नोटबन्दी की पृष्ठभूमि में आप किस तरह का ग्राहक बनना पसंद करेंगे? 'बाजार दर्शन' के लेखक के पहले मित्र की तरह या दूसरे मित्र की तरह अथवा चूरन वाले भगत जी की तरह? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

उत्तर: 'बाजार दर्शन' पाठ में लेखक ने अपने दो तरह के मित्रों का उल्लेख किया है। एक मित्र बाजार

जाकर ढेर सारा सामान खरीद लाता है। वह फिजूलखर्ची करता है। इससे उसका घमंड संतुष्ट होता है। उसको अपनी जरूरत की चीजों का सही पता नहीं होता। दूसरा मित्र बाजार जाता है, वहाँ बहुत देर रुकता भी है, परन्तु वहाँ बहुत-सी चीजें देखकर बहुत-सी चीजों को खरीदना चाहता है परन्तु तय नहीं कर पाता कि वह क्या खरीदे।

अत: खाली हाथ बाजार से वापस लौट आता है। बाजार जाने वाले तीसरे व्यक्ति चूरन वाले भगत जी हैं भगत जी को चौक बाजार की पंसारी की दुकान से केवल काला नमक तथा जीरा खरीदना होता है। शेष बाजार उनके लिए शून्य के बराबर होता है।

वर्तमान नोटबंदी के कारण बाजार अस्त-व्यस्त हो रहा है। ग्राहकों के पास भी धन नहीं है। बाजार जाकर सामान खरीदना आसान नहीं है। इस परिस्थिति में मैं पहले मित्र की तरह फिजूलखर्ची करने के बारे में सोच भी नहीं सकता। वैसे भी ज्यादा चीजों का प्रयोग करना मैं सुख-शांति में बाधक मानता हूँ।

मैं दूसरे मित्र की तरह भी बनना नहीं चाहता। बाजार में जाकर अनिश्चय में पड़ना तथा कुछ भी न खरीद कर समय नष्ट करना मैं उचित नहीं समझता। मैं चाहूँगा कि भगत जी की तरह अपनी जरूरतों के बारे में जानें तथा उनको सीमित रखें। इस प्रकार मैं केवल उपयोगी चीजें ही खरीदूंगा। ऐसी दशा में नोटबंदी के कारण पास में पैसा न होने की समस्या भी मुझे नहीं सतायेगी।

प्रश्न 3. यदि सभी उपभोक्ता भगत जी की तरह हो जाये तो बाजार तथा ग्राहकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? समझाकर लिखिए।

उत्तर: भगत जी एक समझदार उपभोक्ता हैं। उनको पता है कि उनकी आवश्यकता क्या है तथा बाजार से उसकी पूर्ति कैसे हो सकती हैं। वह बाजार के आकर्षण से अप्रभावित रहते हैं। वह उतना ही धन कमाते हैं, जितने की उनको जरूरत होती है। यानी कि छः आने रोज । वह संतोषी तथा निर्लोभी हैं। उनमें संग्रह की प्रवृत्ति नहीं है।

यदि सभी उपभोक्ता भगत जी की तरह हो जायें तो बाजार तथा ग्राहकों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। बाजार को अनावश्यक रूप से चीजों का विज्ञापन करके लोगों को ललचाने की जरूरत नहीं रह जायंगी। ग्राहक उसमें फँसेंगे ही नहीं तथा बाजार को उनका शोषण करने का अवसर नहीं मिल पायेगा।

ग्राहक यह जान लेंगे कि उनको किस चीज की जरूरत है तथा उनको बाजार में वह कहाँ प्राप्त होगी। तब वह बाजार में बेकार भटकेंगे नहीं। वे अनावश्यक चीजें खरीदने में अपना पैसा भी बरबाद नहीं करेंगे। वे अनिश्चय का शिकार भी नहीं होंगे और खाली हाथ बिना कुछ खरीदे बाजार से नहीं लौटेंगे।

वे भगत जी की तरह अपनी जरूरत की चीजें ही बाजार की किसी निश्चित दुकान से खरीदेंगे। वे चीजों का संग्रह नहीं करेंगे। अतः तृष्णा से मुक्त और संतुष्ट रहेंगे। वे शोषण से भी अपनी रक्षा कर सकेंगे।

प्रश्न 4. बाजार किसी का धर्म, जाति, रंग, लिंग या क्षेत्र नहीं देखता वह सिर्फ उसकी क्रय-शक्ति देखता है। इस तरह वह सामाजिक समता की रचना कर रहा है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर: बाजार एक ऐसी संस्था है जहाँ चीजें खरीदी और बेची जाती हैं। बाजार समाज की आवश्यकताओं

की पूर्ति करने वाला स्थान है। यहाँ सभी आ सकते हैं। बाजार आने वाला का धर्म, जाति, रंग, लिंग या क्षेत्र नहीं देखा जाता। बाजार में हिंदू दुकानदार भी होते हैं और मुस्लिम भी। ग्राहक भी सभी धर्मों के लोग होते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही बाजार जा सकते हैं।

बाजार जाने वाले की केवल एक ही चीज देखी जाती है, वह है उसकी क्रय-शक्ति । कोई मनुष्य बाजार में कितना धन खर्च कर सकता है और कितनी चीजें खरीद सकता है, यह देखना ही बाजार का विषय है। जिस मनुष्य के पास धन नहीं है, वह चाहे किसी भी जाति-वर्ग का हो, उसको बाजार से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।

इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि बाजार की दृष्टि में सभी मनुष्य समान होते हैं। वह कोई भेदभाव नहीं करता। बाजार समतामूलक समाज बनाने में योग दे रहा है। यदि गंभीरतापूर्वक देखा जाय तो ऐसा नहीं है। साम्प्रदायिक दंगे होते हैं तो एक वर्ग के लोग दूसरे की दुकानें जलाने में संकोच नहीं करते।

पड़ौसी दुकानदार आमने-सामने आ जाते हैं। आर्थिक श्रेत्र में बाजार समानता को व्यवहार नहीं करता। वहाँ अमीर-गरीब ग्राहकों में भेदभाव होता है। गरीब व्यक्ति की ऊँची दुकानों में घुसने की हिम्मत भी नहीं होती।

प्रश्न 5. 'बाजार दर्शन' निबन्ध में बाजार जाने के सन्दर्भ में मन की कई स्थितियों का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक स्थिति के बारे में अपनी मत व्यक्त कीजिए।

उत्तर: 'बाजार दर्शन' निबंध में बाजार जाने के सन्दर्भ में मन की निम्नलिखित स्थितियों का उल्लेख हुआ है –

(क) खाली मन – खाली मन उसकी वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य को बाजार जाने पर यह पता नहीं होता कि उसकी आवश्यकता क्या है? वह बाजार से क्या खरीदेगा? इस अवस्था में वह बाजार की चकाचौंध से प्रभावित होकर अनाप-शनाप अनावश्यक चीजें खरीदता है। बाद में चीजों की अधिकता उसको आराम की जगह परेशानी ही देती है। उसका पैसा भी बर्बाद होता है।

(ख) खुला मन – मन खुला होने का आशय यह है कि बाजार जाने वाले को अपनी जरूरत का स्पष्ट ज्ञान हो। जैसे भगत जी जानते हैं कि उनको काला नमक तथा जीरा पंसारी की दुकान से खरीदना है। खुले मन वाले व्यक्ति पर बाजार का जादू नहीं चलता। वह अपनी जरूरत की चीजें खरीदकर बाजार को सार्थकता प्रदान करता है। वह फिजूलखर्ची से भी बचा रहता है।

(ग) बन्द मन – मन खुला नहीं है, इसका अर्थ यह नहीं कि मन बन्द है। मन में इच्छाएँ पैदा न होना, उसका कामनामुक्त होना, मन का बन्द होना है। मन को बन्द करने का अधिकार मनुष्य को नहीं है। यह अधिकार तो परमात्मा का है। परमात्मा स्वयं सम्पूर्ण है।

उसी में इच्छामुक्त होने की शक्ति है। मनुष्य अपूर्ण है। उसमें इच्छाएँ पैदा होना स्वाभाविक है। मन में बलपूर्वक इच्छा पैदा न होने देना उसका दमन करना है। मनुष्य के लिए ऐसा करना न संभव है और न उचित ।

प्रश्न 6. पैसे की शक्ति तथा शक्तिहीनता से सम्बन्धित किन्हीं दो साहित्यिक प्रसंगों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर: पैसे में शक्ति होती है। पैसे को पावर कहा जाता है। इस शक्ति को पैसे की 'पर्चेजिंग पावर' अथवा क्रय-शक्ति कहा जाता है। पैसे के बल पर मनुष्य मकान कोठी, कोई भी सम्पत्ति, सामान आदि खरीद सकता है। इससे मनुष्य का श्रम तो खरीदा ही जाता है, उसकी ईमानदारी और शुचिता भी खरीदी जाती है। साहित्य में ऐसे प्रसंगों का उल्लेख मिलता है।

पैसे की यह शक्ति अटल होती है किन्तु कभी-कभी इसकी अनिर्वायता भंग होती भी देखी जाती है। ऐसी दशा में पैसा शक्तिहीन हो जाता है। पैसे की शक्ति का प्रमाण हमको मुंशी प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दरोगा' में मिलता है। जमींदार पंडित अलोपीदीन की चोरी से नमक ले जाती गाड़ियाँ दरोगा जी द्वारा पकड़ी जाती हैं। पंडित जी को इस अपराध के लिए पकड़कर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है।

वहाँ बड़े-बड़े वकील उनकी पैरवी में खड़े हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति उनकी आवभगत में जुट जाता है। पंडित अलोपीदीन धन के बल पर न्यायालय में निरपराध सिद्ध होते हैं तथा मुक्त हो जाते हैं। दूसरी ओर ईमानदार दरोगा बंशीधर को कर्तव्यपालन में असावधान मानकर चेतावनी दी जाती है। उनकी नौकरी चली जाती है।

शक्तिहीनता – पैसे की शक्तिहीनता का प्रमाण भी हमें इसी कहानी में मिलता है। नदी तट पर दरोगा बंशीधर को नमक की गाड़ियाँ छोड़ने के लिए चालीस हजार रुपये तक की रिश्वत पेश की जाती है किन्तु ईमानदार बंशीधर उसे स्वीकार न करके जमींदार अलोपीदीन को बंदी बना लेते हैं।

यहाँ धन-बल की पराजय और शक्तिहीनता स्पष्ट दिखाई देती है। पैसे से सब कुछ नहीं खरीदा जा सकता। ये दोनों ही प्रसंग साहित्य से सम्बन्धित हैं किन्तु यथार्थ जीवन में भी कभी-कभी ऐसा होता देखा जाता है।

प्रश्न 7. ' बाजार दर्शन' के आधार पर बाजार के जादू' को स्पष्ट करते हुए उससे बचने के उपाय बताइए।

उत्तर: 'बाजार दर्शन' निबंध में जैनेन्द्र ने बाजार के जादू के बारे में बताया है। बाजार में जादू होता है। इसका तात्पर्य यह है कि बाजार अपनी प्रदर्शन दक्षता के कारण ग्राहकों को लुभाता है तथा उनको चीजें खरीदने के लिए प्रोत्साहित करता है। बाजार का आकर्षण अत्यन्त प्रबल होता है। उसमें पड़कर मनुष्य उन चीजों को भी खरीद लेता है, जो उसके लिए जरूरी नहीं होती।

बाजार का यह जादू उन लोगों पर ही होता है, जिनका मन खाली तथा जेब भरी होती है। आशय यह है कि जिनको बाजार जाने पर अपनी जरूरतों को ठीक से पता नहीं होता वे अपने पैसे के बल पर बाजार में प्रदर्शित आकर्षक किन्तु गैरजरूरी चीजों को खरीद लेते हैं। जो व्यक्ति अपनी जरूरतों के बारे में ठीक तरह जानता है, वह ऐसा नहीं करता ।

बाजार के जादू से बचने के लिए आवश्यक है। कि बाजार जाने से पहले सोचें कि हमें किस चीज की जरूरत है। इस प्रकार हम जरूरी चीज ही खरीदेंगे तथा बाजार के आकर्षण का प्रभाव हम पर नहीं पड़ेगा। हमें बाजार को आवश्यकता पूर्ति का स्थान मानना चाहिए। उसे अपनी क्रय-शक्ति को प्रदर्शन

करने तथा अपने घमंड के प्रदर्शन का स्थान नहीं मानना चाहिए। ऐसा करके हम बाजार के जादू से बच सकेंगे तथा उसका सही उपयोग कर सकेंगे।

प्रश्न 8. बाजार लोगों की सुख-शांति कैसे छीन लेता है? वह सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त के किस प्रकार विरुद्ध है? लिखिए।

उत्तर: बाजार लोगों की सुख-शांति छीन लेता है। बाजार उपभोक्तावाद से प्रभावित है। वह इस तरह के तरीके अपनाता है कि ग्राहक बाजार में आकर अधिक से अधिक सामान खरीदें। वह सिखाता है कि अपनी जरूरतों को बढ़ाने तथा उनको बाजार में जाकर पूरा करने से ही सभ्यता का विकास होता है।

बाजार में चमक-दमक होती है। बाजार में आकर्षण होता है। उसका जादू प्रबल होता है। उसमें पड़कर मनुष्य फिजूलखर्ची करने को मजबूर हो जाता है। धीरे-धीरे वह कर्ज में डूब जाता है तथा उसको निर्धनता घेर लेती है। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था-सुखी कौन है। युधिष्ठिर का उत्तर था—जो ऋणी नहीं है, वह सुखी है। इस तरह वर्तमान बाजार व्यवस्था लोगों की सुख-शांति छीन रही है।

भारत में 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त मान्य है। बाजार इसके विपरीत प्रदर्शनपूर्ण जीवन-शैली को प्रोत्साहित करता है। वह ज्यादा से ज्यादा चीजें खरीदने तथा उनके उपयोग पर जोर देता है। इससे जीवन में सादगी नहीं रह जाती तथा सादा जीवन बिताने वाला मनुष्य तिरस्कार का पात्र बनता है। बाजार मनुष्य को वैभवपूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है।

प्रश्न 9. बाजार का शास्त्र किसको कहा गया है? उसको मायावी, सरासर औंधा तथा अनीतिशास्त्र कहने का क्या कारण है?

उत्तर: बाजार का शास्त्र अर्थशास्त्र को कहा गया है। अर्थशास्त्र बाजार का पोषण करता है। वह बताता है कि माल का प्रदर्शन पूर्ण विज्ञापन करके किस तरह ग्राहक को आकर्षित किया जाय तथा उसको अनावश्यक चीजों को खरीदने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया जाय। इस प्रकार अर्थशास्त्र विक्रेता को अधिक से अधिक धन कमाने का गुर सिखाता है। वह क्रेता के शोषण के उपाय बताता है। लेखक ने अर्थशास्त्र को मायावी, सरासर औंधा तथा अनीतिशास्त्र कहा है।

ऐसा कहना अकारण नहीं है। माया का अर्थ है-छल-कपट आजकल उपभोक्तावाद का युग है। अर्थशास्त्र अर्थ की उचित सामाजिक व्यवस्था करके छल-कपट द्वारा अधिकाधिक धनोपार्जन के उपाय बताता है। वह बाजार में अनुचित विज्ञापन से ग्राहकों को आकर्षित करके उनके शोषण का द्वारा खोलता है। अर्थशास्त्र मायावी है तथा सरासर औंधा है।

वह समाज के हित में काम न करके उसका अहित करता है। समाज में उसके कारण अमीरी-गरीबी तथा आर्थिक विषमता का जन्म होता है। वह अपने नाम के विपरीत अनर्थ का काम करता है। वह नीति का नहीं अनीति का शास्त्र है। नीति का अर्थ सही और समानतापूर्ण उपार्जन तथा वितरण है। इसके विपरीत जो होता है, वह अनीति है। अर्थशास्त्र द्वारा प्रेरित बाजार-व्यवस्था आर्थिक असमानता की नीति को ही जन्म देती है। इस व्यवस्था से उपार्जित धन दानाय' न होकर 'मदाय' ही होता है। उसके कारण ही राष्ट्रीय धन के नब्बे प्रतिशत पर दस प्रतिशत लोगों का अधिकार हो जाता है।

प्रश्न 10. "जो लोग बाजार से लाभ नहीं उठा सकते, न उसे लाभ दे ही सकते हैं, वे बाजार का बाजारूपन ही बढ़ाते हैं।" इस कथन के आधार पर स्पष्ट कीजिए-

(अ) बाजार से लाभ कौन नहीं उठा सकता?
(ब) बाजार को लाभ कौन नहीं दे पाता?
(स) बाजारूपन क्या है तथा कैसे बढ़ता है?

उत्तर: (अ) बाजार समाज की आवश्यकता पूर्ति के लिए बना है। कुछ लोगों को अपनी आवश्यकता का सही पता ही नहीं होता। वे बिना यह जाने कि उनको किस चीज की जरूरत है, बाजार जाते हैं और बाजार की चमक-दमक से प्रभावित होकर अनाप-शनाप सामान खरीद लेते हैं।

वे अपनी क्रय शक्ति का अनुचित प्रदर्शन करते हैं। अनावश्यक चीजें खरीदने से फिजूलखर्ची बढ़ती है तथा ज्यादा चीजें आराम की जगह असुविधा ही पैदा करती हैं। ऐसे लोग बाजार का लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं।

(ब) बाजार में जाकर अपनी 'पर्चेजिंग पावर' का प्रदर्शन करने वाले अपने मन के घमंड को भले ही संतुष्ट कर लें परन्तु उनके कारण बाजार के उद्देश्य को हानि पहुँचती है। बाजार का उद्देश्य लोगों की आवश्यकता की पूर्ति करना है। ऐसे लोगों के कारण बाजार शोषण का स्थल बन जाता है। वह अपने उद्देश्य को पूरा करके अपने गठन का लाभ नहीं ले पाता।।

(स) जब बाजार अपने लक्ष्य से भटक जाता है तो वह प्रदर्शन का स्थान तथा ग्राहकों के शोषण का स्थान बन जाता है। वह समाजोपयोगी और उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने का स्थान नहीं रह जाता। अनुचित तरीकों से अनावश्यक खरीद के लिए उत्तेजित करना ही बाजारूपन है। बाजार की यह दशा उन लोगों के कारण होती है जो अपनी आवश्यकता को जाने बिना बाजार जाकर अनाप-शनाप खरीदारी करते हैं।

बाजार दर्शन लेखक-परिचय

प्रश्न- जैनेन्द्र कुमार का जीवन परिचय देते हुए उनकी साहित्य सेवा का उल्लेख कीजिए।

उत्तर- जीवन परिचय-जैनेन्द्र कुमार का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के कौड़ियागंज कस्बे में सन् 1905 में हुआ था। बचपन में आपको पिता की छाया से वंचित होना पड़ा। आपकी माता ने आपका पालन-पोषण किया। आपका मूल नाम आनन्दीलाल था।

आपने हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल ऋषि ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा ग्रहण की। सन् 1919 में मैट्रिक करने के बाद आपने काशी विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किन्तु गाँधीजी के आह्वान पर अध्ययन छोड़कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े। बाद में आपने स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन किया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको जेल यात्रा भी करनी पड़ी। आप जेल यात्रा के साथ साहित्य साधना करते रहे। हिन्दुस्तानी अकादमी से आप पुरस्कृत भी हुए। सन् 1988 में आपका देहावसान हो गया।

साहित्यिक परिचय-

जैनेन्द्र कुमार ने कथा साहित्य के साथ हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं पर भी लेखनी चलाई है। आप हिन्दी में मनोविश्लेषणात्मक कथा साहित्य की रचना के पुरोधा हैं। प्रेमचन्द ने आपको हिन्दी का गोर्की कहकर महिमा मण्डित किया था। जैनेन्द्र कुमार ने कहानियों के साथ ही उपन्यासों की भी रचना की है। आपने विभिन्न विषयों पर महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखे हैं।

अपने निबन्धों में वह विचारक तथा विश्लेषक के रूप में प्रकट हुए हैं। जैनेन्द्र की भाषा तत्सम शब्द प्रधान है। उसमें प्रचलित शब्दों को उदारता से स्वीकार किया गया है। आवश्कता के अनुसार मुहावरों का प्रयोग करने से उनकी भाषा पुष्ट हुई है। जैनेन्द्र ने विचारात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक आदि शैलियों के साथ व्यंग्य शैली को भी अपनाया है।

कृतियाँ-जैनेन्द्र जी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं

कहानी संग्रह-नीलम देश की राजकन्या, फाँसी, जय-सन्धि, वातायन, एक रात, दो चिड़िया, पाजेब
उपन्यास-परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, जयवर्धन, मुक्तिबोध॥
निबन्ध संग्रह-पूर्वोदय, जड़ की बात, साहित्य का श्रेय और प्रेय, सोच-विचार, प्रश्न और प्रश्न, काम, प्रेम और परिवार, अकाल पुरुष गाँधी॥
संस्मरण-'ये और वे'
अनुवाद- प्रेम में भगवान (कहानी) मंदाकिनी, पाप और प्रकाश (नाटक)

बाजार दर्शन पाठ-सारांश

प्रश्न- जैनेन्द्र के बाजार दर्शन निबन्ध का सारांश लिखिए।

उत्तर- परिचय-बाजार दर्शन जैनेन्द्र कुमार का विचार प्रधान निबन्ध है। इसमें लेखक ने बाजार की आवश्यकता और उपयोगिता पर विचार किया है। बाजार एक ऐसी संस्था है जिसका उद्देश्य उपभोक्ता की आवश्यकता की पूर्ति करना है, उसका शोषण करना नहीं। बाजार वस्तुओं का प्रदर्शन स्थल नहीं है।

अनावश्यक क्रय-लेखक के मित्र एक मामूली चीज खरीदने बाजार गए थे। लौटे तो उनके साथ अनेक बण्डल थे। इस फिजूलखर्ची के लिए उन्होंने अपनी पत्नी को जिम्मेदार बताया। स्त्रियाँ अधिक सामान बाजार से खरीदती हैं। यह ठीक है किन्तु पुरुष अपना दोष पत्नी पर डालकर बचना चाहते हैं। खरीदारी में एक अन्य चीज का भी महत्त्व है। वह है मनीबैग अर्थात् पैसे की शक्ति।

पैसा की पॉवर-पैसा पॉवर है। इसका प्रमाण लोग अपने आस-पास माल-असबाब, कोठी-मकान आदि इकट्ठा करके देते हैं। कुछ संयमी लोग इस पॉवर को समझते हैं, किन्तु वे प्रदर्शन में विश्वास नहीं करते। वे संयमी होते हैं। वे पैसा जोड़ते जाते हैं तथा इस संग्रह को देखकर गर्व का अनुभव करते हैं।

मित्र का मनी बैग खाली हो गया था। लेखक ने समझा कि जो सामान उन्होंने खरीदा था वह उनकी आवश्यकता के अनुरूप था। उन्होंने अपनी 'पर्चेजिंग पावर' अर्थात् क्रय के अनुसार ही सामान खरीदा था।

बाजार का जादू-बाजार में आकर्षण होता है। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ ग्राहक को आकर्षित करती हैं कि वह उनको खरीदे। इस आकर्षण से बहुत कम लोग बच पाते हैं। संयमहीन व्यक्ति को बाजार कामना से व्याकुल ही नहीं पागल बना देता है, उसमें असन्तोष, ईर्ष्या और तृष्णा उत्पन्न करके उसको बेकार कर देता है।

जादू से रक्षा-लेखक के एक अन्य मित्र भी बाजार गए थे। वहाँ अनेक चीजें थीं। वह बाजार में रुके भी बहुत देर तक। उनका सभी चीजें खरीदने का मन हो रहा था। सोचते रहे क्या लँ क्या न लैं? उन्होंने कुछ नहीं खरीदा, खाली हाथ लौटे। बाजार का जादू उसी पर चलता है जिसकी जेब भरी हो और मन खाली हो।

मन खाली होने का मतलब यह पता न होना है कि उसकी आवश्यकता की वस्तु क्या है। वह सभी चीजों को खरीद लेना चाहता है जब यह जादू उतरता है तो पता चलता है कि अनावश्यक चीजें खरीदने से आराम नहीं कष्ट ही होता है। बाजार जाना हो तो खाली मन जाना ठीक नहीं। बाजार जाते समय अपनी आवश्यकता ठीक से पता होनी चाहिए।

खाली और बन्द मन-मन खाली न रहे इसका मतलब मन का बन्द होना नहीं है। मन के बन्द होने का अर्थ है-शून्य हो जाना। शून्य होने का अधिकार परमात्मा को है। वह पूर्ण है, मनुष्य तो अपूर्ण है। उसके मन में इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मन को बलात् बन्द करना केवल हठ है।

सच्चा ज्ञान अपूर्णता के बोध को गहरा करता है। सच्चा कर्म इस अपूर्णता को स्वीकार करके ही होता है। अतः मन को बलात् बन्द नहीं करना है। किन्तु मन को जो चाहे सो करने की छूट नहीं देनी है।

चूरनवाले भगत जी-लेखक के पड़ोसी चूरनवाले भगत जी हैं। वे चूरन बेचते हैं। उनका चूरन प्रसिद्ध है। वह नियत समय पर चूरन की पेटी लेकर निकलते हैं। लोग उनसे सद्भाव रखते हैं। उनका चूरन तुरन्त बिक जाता है। छ: आने की कमाई होते ही वह शेष चूरन बच्चों में मुफ्त बाँट देते हैं।

बाजार का जादू उन पर प्रभाव नहीं डालता। पैसा उनसे प्रार्थना करता है कि मुझे अपनी जेब में आने दीजिए। किन्तु वह निर्दयतापूर्वक उसका निवेदन ठुकरा देते हैं। वे नियम से चूरन बनाते हैं, बेचते हैं और उतना ही कमाते हैं, जितने की उनको जरूरत होती है।

भगत जी बाजार से नित्य सामान खरीदते हैं। वह बाजार में सबसे हँसते-बोलते हैं। वह वहाँ आँखें खोलकर चलते हैं। बाजार में अनेक फैंसी स्टोर हैं। बाजार माल से भरा पड़ा है, वह सबको देखते आगे बढ़ जाते हैं और पंसारी की दुकान पर रुकते हैं, काला नमक तथा जीरा खरीदते हैं। इसके बाद चाँदनी चौक (बाजार) का आकर्षण उनके लिए शून्य हो जाता है।

पैसे की व्यंग्य शक्ति-पैसे की व्यंग्य शक्ति चुभने वाली होती है। पैदल चलने वाले के पास से गुजरती धूल उड़ाती मोटर उस पर व्यंग्य करती हैं कि तेरे पास मोटर नहीं है। वह सोचता है-मैं अभागा हूँ, नहीं तो किसी मोटरवाले के घर जन्म क्यों न लेता।

पैसे की व्यंग्य शक्ति का प्रभाव चूरनवाले भगतजी पर नहीं होता उनमें इससे बचने का बल है। यह बल उसी को प्राप्त होता है, जिसमें तृष्णा तथा संचय की प्रवृत्ति नहीं है। इस बल को आत्मिक, नैतिक, धार्मिक

कोई भी बल कह सकते हैं। जिसमें यह बल होता है, वह बाजार के व्यंग्य से प्रभावित नहीं होता निर्बल ही धन की ओर झुकता है।

बाजार की सार्थकता-जो मनुष्य जानता है कि उसको क्या चाहिए। उसी से बाजार को सार्थकता प्राप्त होती है। अनावश्यक चीजें खरीदने वाले बाजार की शैतानी और व्यंग्य शक्ति ही बढ़ाते हैं। ऐसे लोगों के कारण बाजार का सामाजिक सद्भाव नष्ट होता है।

और कपट बढ़ता है। ऐसा बाजार मानवता के लिए विडम्बना है। ऐसे बाजार का पोषण करने वाला अर्थशास्त्र पूर्णत: उल्टा है। वह मायावी शास्त्र है। ऐसा अर्थशास्त्र अनीति शास्त्र है।

→ महत्त्वपूर्ण गद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्याएँ

1. उनका आशय था कि यह पत्नी की महिमा है। उस महिमा का मैं कायल हूँ। आदिकाल से इस विषय में पति से पत्नी की ही प्रमुखता प्रमाणित है और यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं, स्त्रीत्व का प्रश्न है। स्त्री माया न जोड़े, तो क्या मैं जोड़ें? फिर भी सच सच है और वह यह कि इस बात में पत्नी की ओट ली जाती है। मूल में एक और तत्व की महिमा सविशेष है। वह तत्व है मनीबेग, अर्थात् पैसे की गरमी यो एनर्जी॥ (पृष्ठ सं. 42)

कठिन शब्दार्थ-आशय = तात्पर्य। महिमा = महत्ता। कायल होना = स्वीकार करना। आदिकाल = प्राचीनकाल। प्रमुखता = प्रधानता। माया = धन। ओट लेना = बहाना बनाकर बचना। मूल = जड़े। एनर्जी = शक्ति।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' पाठ से लिया गया है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक के एक मित्र कोई मामूली सामान लेने बाजार गए थे, लौटे तो उनके पास सामान के कई बण्डल थे।

लेखक को उन्होंने बताया कि बाजार जाने पर उनको इतना अधिक सामान पत्नी के कारण खरीदना पड़ा।

व्याख्या–लेखक कहता है कि उसके मित्र ने ज्यादा सामान खरीदने की जिम्मेदारी अपनी पत्नी पर डाल दी और उसे उसकी महिमा बताया। लेखक का कहना है कि पत्नी की महिमा को तो वह भी मानता है। अधिक सामान खरीदने और जोड़ने में प्राचीनकाल से ही पति की अपेक्षा पत्नी को प्रधानता अधिक रही है।

यहाँ व्यक्तित्व नहीं स्त्रीत्व का विधान है अर्थात् सामान जोड़ना पुरुषों का नहीं स्त्रियों का स्वभाव होता है। धन-दौलत, सम्पत्ति जोड़ना स्त्रियों का काम है। तब भी सच्चाई को बहाने बनाकर छिपाया नहीं जा सकता।

सच्चाई यह है कि पुरुष जो फिजूलखर्ची करता है उसके लिए पत्नी को जिम्मेदार बताकर बहाने से स्वयं को बचा लेता है। खर्च अथवा आवश्यकता से अधिक खर्च करना एक और बात पर निर्भर करता है।

वह बात है मनी बैग, बटुआ अर्थात् उसमें रखा हुआ पैसा और उसकी क्रय शक्ति। जितना अधिक धन होगा, बाजार से उतनी ही ज्यादा खरीदारी की जायेगी।

विशेष-

1. ज्यादा खरीदना और घर में चीजें इकट्ठा करना स्त्रियों का स्वभाव माना जाता है। पुरुष इसी का बहाना बनाकर फिजूलखर्ची करते हैं।

2. ज्यादा चीजें खरीदने के लिए ज्यादा पैसा पास में होना भी आवश्यक है।

3. भाषा तत्सम शब्द प्रधान है उसमें कोयल, मनीबैग, एनर्जी आदि उर्दू तथा अंग्रेजी भाषा के शब्दों तथा माया, जोड़ना, ओट लेना आदि मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

4. शैली में व्यंग्य विनोद का पुट है।

2. पैसा पावर है। पर उसके सबूत में आस-पास माल-टाल न जमा हो, तो क्या वह खाक पावर है। पैसे को देखने के लिए बैंक-हिसाब देखिए, पर पाल-असबाब मकान-कोठी तो अनदेखे भी दीखते हैं। पैसे की उस पर्चेजिंग पॉवर के प्रयोग में ही पावर का रस है। लेकिन नहीं। लोग संयमी भी होते हैं। वे फिजूल सामान को फिजूल समझते हैं। वे पैसा बहाते नहीं हैं और बुद्धिमान होते हैं।

बुद्धि और संयमपूर्वक वह पैसे को जोड़ते जाते हैं। वह पैसे की पावर को इतना निश्चय समझते हैं। कि उसके प्रयोग की परीक्षा उन्हें दरकार नहीं है। बस खुद पैसे के जुड़ा होने पर उनका मन गर्व से भरा फूला रहता है। (पृष्ठ सं. 43)

कठिन शब्दार्थ-पावर = शक्ति। सबूत = प्रमाण। माल-टाल = सम्पत्ति। खाक = मिट्टी, राख। खाक पावर है = महत्त्वहीन है, बेकार है। माल-असबाब = सामान। पर्चेजिंग पावर = क्रय शक्ति। रस = आनन्द। फिजूल = व्यर्थ। बहाना = नष्ट करना। दरकार = जरूरी। मन गर्व से फूला रहना = मन में घमण्ड अनुभव करना।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक पाठ से लिया गया है। इस निबन्ध के लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक कहता है कि बाजार से सामान खरीदने में पैसा महत्वपूर्ण है। पैसे में चीजों को खरीदने की ताकत होती है। बिना धन के चीजें नहीं खरीदी जा सकतीं।

व्याख्या-लेखक कहता है कि पैसा पावर है अर्थात् धन में क्रय शक्ति होती है। पैसे की इस शक्ति का प्रमाण उस सामान को देखकर मिलता है, जो किसी आदमी के पास जमा होता है। इसके बिना पैसे की ताकत को प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

धन का पता किसी के बैंक खाते में जमा राशि को देखकर किया जा सकता है। लेकिन सामान-सट्टा और मकान-कोठी तो बिना देखे ही सबको दिखाई देते हैं। पैसे में जो क्रय शक्ति होती है, उसका प्रयोग करके अर्थात् पैसे को खर्च करके सामान खरीदने से उसकी शक्ति का आनन्द मिलता है। पैसे की शक्ति का आनन्द लेने के लिए खरीदारी करना जरूरी नहीं है। संयमी लोगों को पैसा पास होने से ही खुशी मिल जाती है।

वे बेकार की चीजें नहीं खरीदते। अनावश्यक चीजें खरीदकर इकट्ठा करना वे बेकार समझते हैं और उनमें अपना धन नष्ट नहीं करते। वे समझदार होते हैं। वे अपना धन एकत्र करते रहते हैं, जोड़ते रहते हैं। उसको खर्च करने में संयम बरतते हैं। पैसे की शक्ति की परीक्षा करने के लिए वे उसको खर्च करने की जरूरत नहीं समझते। उनको तो उसकी ताकत पर पहले ही पूरा विश्वास होता है। उनके पास पैसा है-यह मानकर ही वे सन्तुष्ट रहते हैं, प्रसन्न रहते हैं और गर्व की भावना को मन में अनुभव करते हैं।

विशेष-

1. भाषा तत्सम शब्दों, उर्दू, अंग्रेजी शब्दों तथा मुहावरों के प्रयोग के कारण समृद्ध है। उसमें विषयानुकूलता तथा प्रवाह है।

2. शैली में चुटीलापन है। वह विचारात्मक है।

3. लोग पैसे की शक्ति का प्रमाण अपने पास बहुत-सी सामान और सम्पत्ति एकत्र करके देते हैं।

4. संयमी अर्थात् मितव्ययी लोग पैसा खर्च नहीं करते, उसको जोड़कर ही सन्तुष्ट रहते हैं।

3. मैंने मन में कहा, ठीक। बाजार आमन्त्रित करता है कि आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हैं। नहीं कुछ चाहते हो तो भी देखने में क्या हरज है। अजी आओ भी। इस आमन्त्रण में यह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है।

लेकिन ऊँचे बाजार का आमन्त्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव। चौक बाजार में खड़े होकर आदमी को लगने लगता है कि उसके अपने पास काफी नहीं है। और चाहिए, और चाहिए। मेरे यहाँ कितना परिमित है और यहाँ कितनी अतुलित है।

ओह! कोई अपने को न जाने तो बाजार का यह चौक उसे कामना से विकल बना छोड़े। विकल क्यों पागल। असन्तोष, तृष्णा और ईष्र्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए बेकार बना डाल सकता है। (पृष्ठ सं. 43)

कठिन शब्दार्थ-आमन्त्रित करना = बुलाना। हरज = नुकसान, हानि। तिरस्कार = अपमान। मूक = गूंगा, शब्दहीन। चाह = इच्छा। काफी = पर्याप्त, अधिक। परिमित = सीमित, कम। अतुलित = अधिक।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बजार दर्शन' शीर्षक पाठ से लिया गया है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक कहता है कि कुछ लोग अनाप-शनाप खरीदारी करते हैं। अनावश्यक चीजें खरीदने का दोष वे अपनी पत्नी के सिर पर मढ़ देते हैं।

फिजूलखर्ची उनकी आदत होती है। खरीदारी में पास में खूब पैसा होने का भी योगदान रहता है। इसके लिए बाजार भी प्रेरक होता है। ये तीनों तत्व ही फिजूलखर्ची के लिए उत्तरदायी होते हैं।

व्याख्या-लेखक को उसके मित्र ने बताया कि बाजार में सजी हुई चीजें देखकर उनको खरीदने के लोभ से वह बच न सका और ढेर सारा सामान खरीद लाया। लेखक भी इस विषय में उससे सहमत हुआ। बाजार

क्रेता को बुलाता है। चीजें खरीदने की लिए निमन्त्रण देता है। वह कहता है आकर मुझे लूटो, खूब लूटो। यहाँ आकर सब कुछ भुलाकर मुझे देखो। मेरा सुन्दर रूप तुम्हारे देखने के लिए ही बना है। यदि मुझसे किसी चीज की जरूरत नहीं है तब भी मुझे देखने में कोई हानि नहीं है।

इस प्रकार बाजार का आकर्षण ग्राहक को बुलाता है। इस बुलाने की एक विशेषता यह है कि इसमें आग्रह का भाव नहीं होता। आग्रह में अपमान छिपा होता है। ऊँचे बाजार में ग्राहक को पुकार कर नहीं बुलाया जाता। वह उसको मौन रहकर ही आकर्षित करता है, बुलाता है।

मौन बुलावा ग्राहक में इच्छा पैदा करता है। उसको लगता है कि बाजार में अनेक चीजें ऐसी हैं जो उसके पास नहीं हैं। चौक बाजार में खड़ा आदमी सोचता है कि उसके पास बहुत सी चीजें नहीं हैं उसको और चीजों की जरूरत है।

बाजार में अपार सामान भरा पड़ा है किन्तु उसके पास बहुत कम सामान है। उसको और अधिक सामान की जरूरत है। बाजार का प्रबल आकर्षण उसको अपनी जेब खाली करने को बाध्य करता है।

जिस मनुष्य को अपनी आवश्यकता का ठीक और सही पता नहीं होता, वह बाजार के आकर्षण, आमन्त्रण से बच नहीं पाता। उसके मन में चीजें खरीदने की प्रबल इच्छा उत्पन्न करके बाजार उसको व्याकुल ही नहीं व्यग्र कर देता है। वह उसको पागल कर देता है।

बाजार में प्रदर्शित चीजों का आकर्षण उसकी सोच को विकृत कर देता है। वह उसके मन में नई-नई अनेक चीजों को पाने की लालसा पैदा कर देता है। जिनके घर में खूब सामान है उनके प्रति उसके मन में जलन की भावना पैदा हो जाती है।

इस बाजार का प्रबल आकर्षण मनुष्य को असन्तुलित करके उसमें असंयम जगाता है तथा उसको सदा के लिए बेकार बना देता है।

विशेष-

1. बाजार में सुसज्जित वस्तुएँ ग्राहक को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और खरीदने के लिए उसमें प्रबल व्यग्रता पैदा करती हैं।

2. बाजार के आकर्षण से प्रभावित मनुष्य अनावश्यक चीजें खरीदकर ठगा जाता है।

3. भाषा बोधगम्य, विषयानुकूल तथा प्रवाहपूर्ण है। छोटे वाक्य तथा उनकी पुनरावृत्ति से भाषा का प्रभाव तथा आकर्षण बढ़ा है।

4. शैली विचारात्मक है।

4. बाजार में एक जादू है। वह जादू आँख की राह काम करता है। वह रूप का जादू है पर जैसे चुम्बक का जादू लोहे पर ही चलता है, वैसे ही इस जादू की भी मर्यादा है। जेब भरी हो और मन खाली हो, ऐसी हालत

में जादू का असर खूब होता है। जेब खाली पर मन भरा न हो, तो भी जादू चल जाएगा। मन खाली है, तो बाजार की अनेकानेक चीजों का निमन्त्रण उस तक पहुँच जाएगा। कहीं हुई उस वक्त जेब भारी तब तो फिर वह मन किसकी मानने वाला है। (पृष्ठ सं. 44)

कठिन शब्दार्थ-राह = रास्ता। जादू = आकर्षण। चुम्बक = लोहे को आकर्षित करने वाली धातु। मर्यादा = सीमा। असर = प्रभाव। निमन्त्रण = बुलावा॥

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। बाजार में प्रबल आकर्षण है। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ ग्राहकों को खरीदारी के लिए आकर्षित करती हैं। इस आकर्षण से बचने का उपाय अपनी आवश्यकता का ठीक-ठीक ज्ञान होना है। इसके अभाव में मनुष्य को इच्छाएँ घेर लेती हैं और उसको दुःख देती हैं।

व्याख्या-लेखक कहता है कि बाजार में आकर्षण होता है। वह आँखों के रास्ते लोगों को आकर्षित करता है। बाजार में प्रदर्शित सुन्दर वस्तुओं को देखकर उनको खरीदने की इच्छा पैदा होती है। यह आकर्षण सुन्दर रूप का है। सुन्दर चीजें आकर्षक होती हैं।

जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार बाजार लोगों को आकर्षित करता है। लोहा चुम्बक से प्रभावित होता है। अन्य वस्तुएँ नहीं। उसी प्रकार बाजार के आकर्षण की भी सीमा होती है।

जिनके पास जेब में खूब पैसा होता है तथा वे यह नहीं जानते कि उनकी जरूरतें क्या हैं, वे बाजार के जाल में फंस जाते हैं। लोग विज्ञापनों से प्रभावित होते हैं। वे बाजार के जादुई प्रभाव से बच नहीं पाते। वे अनियन्त्रित होकर बिना सोच-विचारे बाजार में चीजें खरीदने में जुट जाते हैं।

विशेष-

1. बाजार का आकर्षण किसी जादू के समान होता है।

2. बाजार का जादू उन पर चलता है जिनके पास खूब पैसा होता है तथा जिनको अपनी जरूरतों का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे ही अनावश्यक चीजें खरीदते हैं।

3. भाषा बोधगम्य है। वह विषयानुकूल है। शब्द-चयन आवश्यकता के अनुरूप है। मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

4. शैली विचार-विवेचनात्मक है।

5. पर उस जादू की जकड़ से बचने का एक सीधा-सा उपाय है। वह यह कि बाजार जाओ तो मन खाली न हो। मन खाली हो, तब बाजार न जाओ। कहते हैं लू में जाना हो, तो पानी पीकर जाना चाहिए। पानी भीतर हो, लू का लूपन व्यर्थ हो जाता है। मन लक्ष्य में भरा हो तो बाजार भी फैला-का-फैला ही रह जायगा।

तब वह घाव बिलकुल नहीं दे सकेगा, बल्कि कुछ आनन्द ही देगा। तब बाजार तुमसे कृतार्थ होगा, क्योंकि

तुम कुछ-न-कुछ सच्चा लाभ उसे दोगे। बाजार की असली कृतार्थता है आवश्यकता के समय काम आना। (पृष्ठ सं. 44)

कठिन शब्दार्थ-जादू = आकर्षण। जकड़ = पकड़ा। जाल। लू = गरम हवा। भीतर = अन्दर, पेट में। लूपन = गर्मी का प्रवाह। लक्ष्य = उद्देश्य। फैला-का-फैला = प्रदर्शित, विज्ञापित। घाव देना = अनुचित प्रभाव डालना। कृतार्थ = कृतकृत्य, आभारी॥

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक ने बताया है कि बाजार में प्रबल आकर्षण होता है। बाजार का जादू उसको जकड़ लेता है। इससे बचने के लिए लेखक कहता है कि बाजार जाते समय मन खाली न हो॥

व्याख्या- लेखक कहता है कि बाजार का आकर्षण एक तरह की जकड़न होती है। उससे बचने का एक सरल तरीका है कि बाजार जाते समय मन खाली न हो। आशय यह है कि बाजार जाने वाले को यह पता होना चाहिए कि उसको क्या चाहिए यदि बाजार जाने वाले को अपनी जरूरत की चीजों का सही पता न हो तो उसको बाजार जाना ही नहीं चाहिए।

गर्मी के मौसम में जब लू चलती है तो घर से बाहर जाने वाले को उसके दुष्प्रभाव से बचाव करना पड़ता है। अन्यथा वह बीमार पड़ सकता है। लू से बचने के लिए खूब पानी पीकर। बाहर जाते हैं। जब शरीर में पानी की पर्याप्त मात्रा होती है तो लू नहीं लगती। खूब पानी पीकर बाहर जाना लू के बुरे प्रभाव से रक्षा करता है।

यदि ग्राहक को अपने उद्देश्य अर्थात् जरूरत की चीज का ठीक से पता है तो बाजार का अनुचित आकर्षण उसको प्रभावित नहीं कर पाता। वह तरह-तरह की चीजों को वहाँ देखकर उन्हें नहीं खरीदता और फिजूलखर्ची से बचा रहता है।

अपनी जरूरत की चीजें बाजार से खरीदकर उसको प्रसन्नता ही होती है। उस अवस्था में बाजार अपने ग्राहक का आभारी होता है कि उसने बाजार को सही और उपयोगी बनाया। दूसरे, बाजार को कुछ-न-कुछ सच्चा लाभ ही प्राप्त होता है।

बाजार का महत्व और उपयोगिता यह है कि वह ग्राहक को उसकी आवश्यकता की वस्तु उपलब्ध कराये, उसकी जरूरतों को पूरा करने में सहायक हो। ग्राहक को अपने आकर्षण में फंसाकर अनावश्यक खरीदारी के लिए प्रेरित करना अनुचित है।

विशेष-

1. बाजार की उपयोगिता लोगों की जरूरत की चीजें उनको उपलब्ध कराने में है।

2. विज्ञापन के द्वारा चीजों का अनावश्यक प्रचार बाजार का अनुचित उपयोग है।

3. भाषा बोधगम्य तथा विषयानुरूप है।

4. शैली विचार विवेचनात्मक है।

6. यहाँ एक अन्तर चीन्ह लेना बहुत जरूरी है। मन खाली नहीं रहना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वह मन बन्द रहना चाहिए। जो बन्द हो जायगा, वह शून्य हो जायगा। शून्य होने का अधिकार बस परमात्मा का है जो सनातन भाव से सम्पूर्ण है।

शेष सब अपूर्ण हैं। इससे मन बन्द नहीं रह सकता। सब इच्छाओं का निरोध कर लोगे, यह झूठ है। और अगर इच्छानिरोधस्तपः का ऐसा ही नकारात्मक अर्थ हो, तो वह तप झूठ है। वैसे तप की राह रेगिस्तान को जाती होगी, मोक्ष की राह वह नहीं है। ठाट देकर मन को बन्द कर रखना जड़ता है। लोभ का यह जीतना नहीं है कि जहाँ लोभ होता है, यानी मन में, वहाँ नकार हो!

यह तो लोभ की ही जीत है और आदमी की हार। आँख अपनी फोड़ डाली, तब लोभनीय के दर्शन से बचे तो क्या हुआ? ऐसे क्या लोभ मिट जाएगा? और कौन कहता है कि आँख फूटने पर रूप दीखना बन्द हो जायगा? क्या आँख बन्द करके ही हम सपने नहीं लेते हैं? और वे सपने क्या चैन-भंग नहीं करते हैं। (पृष्ठ सं. 44)

कठिन शब्दार्थ-चीन्ह लेना = पहचान लेना। सनातन भाव = सृष्टि के आरम्भ होने का भाव। निरोध = रोकना। इच्छा निरोध स्तपः = इच्छाओं पर नियन्त्रण ही तपस्या है। नकारात्मक = निषेधवाचक। मोक्ष = मुक्ति। लोभनीय = लुभाने योग्य।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से लिया गया है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। बाजार का जादू उसको ही प्रभावित करता है, जिसके पास खुब पैसा हो और यह पता न हो कि उसकी जरूरत क्या है। बाजार के आकर्षण से बचना है तो मन खाली नहीं होना चाहिए।

व्याख्या- लेखक कहता है कि यह समझना बहुत जरूरी है कि मेन खाली न रहने का तात्पर्य मन को बन्द रहना नहीं है। दोनों बातों में अन्तर है और इस अन्तर को पहचानना आवश्यक है। जो बन्द हो जायगा वह शून्य हो जायगा। परमात्मा को ही शून्य होने का अधिकार है क्योंकि वह सनातन और सम्पूर्ण है।

अन्य सभी अपूर्ण हैं। अत: मन बन्द नहीं हो सकता है। यह झूठ है कि मनुष्य अपनी सभी इच्छाओं को नियन्त्रित कर लेगा, उन पर रोक लगा लेगा। इच्छाओं को रोकना तप है। यदि 'इच्छानिरोधस्तप:' का यही निषेध अथवा नकारसूचक अर्थ है तो तपस्या अर्थहीन है।

इस प्रकार का तप मुक्ति देने वाला नहीं होता। उससे कोई लाभ नहीं है। मन को बलात् बन्द रखना मूर्खता है। इस प्रकार मन को निरुद्ध करके लोभ पर विजय नहीं पाई जा सकती।

लोभ मन में होता है और वहाँ नकारात्मकता हो, तो यह लोभ की ही जीत है। यह लोभ को जीतने का प्रयास करने वाले मनुष्य की हार है। जो आपको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, उसको देखने से बचने के लिए आप अपनी आँखें फोड़ लेंगे तो यह सही प्रयास नहीं है। आँखें नहीं रहने पर भी रूप दिखाई देना बन्द नहीं

होता। आँखें बन्द होने पर भी नींद की दशा में मनुष्य सपने देखता है। सपनों में देखी बातों से उसकी सुख-शान्ति नष्ट होती है। अतः मन को बन्द करने से कोई लाभ नहीं है।

विशेष-

1. लेखक का कहना है कि निषेध से मनुष्य के मन पर सच्चा नियन्त्रण नहीं होता।
2. मन को उचित-अनुचित का विचार कर उचित पक्ष को ग्रहण करने में सामर्थ्यवान होना चाहिए।
3. भाषा बोधगम्य तथा प्रवाहपूर्ण है।
4. शैली विचारात्मक है।

7. इससे मन को बन्द कर डालने की कोशिश तो अच्छी नहीं। वह अकारथ है। यह तो हठवाला योग है। शायद हठ-ही-हठ है, योग नहीं है। इससे मन कृश भले हो जाय और पीला और अशक्त जैसे विद्वान का ज्ञान। वह मुक्त ऐसे नहीं होता। इससे वह व्यापक की जगह संकीर्ण और विराट की जगह क्षुद्र होता है।

इसलिए उसका रोम-रोम मूंदकर बन्द तो मन को करना नहीं चाहिए। वह मन पूर्ण कब है? हम में पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते? अपूर्ण हैं, इसी से हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हम में गहरा करता है।

सच्चा कर्म सदा इस अपूर्णता की स्वीकृति के साथ होता है। अतः उपाय कोई वही हो सकता है। जो बलात् मन को रोकने को न कहे, जो मन को भी इसलिए सुने क्योंकि वह अप्रयोजनीय रूप में हमें नहीं प्राप्त हुआ है। हाँ, मनमानेपन की छूट मन को न हो, क्योंकि वह अखिल का अंग है, खुद कुल नहीं है। (पृष्ठ सं. 44-45)

कठिन शब्दार्थ-अकारथ = व्यर्थ। कृश = दुर्बल। संकीर्ण = संकुचित। क्षुद्र = तुच्छ। अभिन्न = समान। बोध = ज्ञान। अप्रयोजनीय = निरुद्देश्य। अखिल = समस्त, पूर्ण। कुल = सम्पूर्ण (परमात्मा)।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक पाठ से लिया गया है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक का कहना है कि मन को बलपूर्वक बन्द नहीं करना है, उसे रोकना नहीं है। इससे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी। आँखें बन्द होने पर भी हम सपने देखते हैं। ये सपने हमारी सुख-शान्ति में बाधा ही डालते हैं।

व्याख्या- लेखक का मानना है कि मन को बलपूर्वक रोकने का प्रयत्न उचित नहीं माना जा सकता। ऐसा प्रयत्न बेकार है। यह एक प्रकार का हठयोग है। इसमें हठ ही अधिक है। योग तो सम्भवत: है ही नहीं। इस प्रकार के प्रयत्न मन को दुर्बल करते हैं।

उनसे मन को मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इस प्रकार का प्रयास मन की व्यापकता और विराटता छीनकर उसको संकुचित और छोटा बना देता है। लेखक के अनुसार मन को पूरी तरह निरुद्ध नहीं करना है। वैसे ही मन पूर्ण नहीं है। मनुष्य यदि पूर्ण होता तो वह परमात्मा के समान ही महाशून्य होता। मनुष्य अपूर्ण है, अपूर्णता ही मनुष्य की पहचान है।

सच्चा ज्ञान वह है जो मनुष्य को उसके अपूर्ण होने के बारे में बताए। मनुष्य को उसकी अपूर्णता का सदा ध्यान दिलाता रहे। मनुष्य की इस अपूर्णता को स्वीकार करने पर ही कोई सच्चा कार्य हो सकता है। इसके लिए कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है किन्तु वह उपाय मन को जबरदस्ती निरुद्ध करने की प्रेरणा देने वाला नहीं होना चाहिए।

मनुष्य को मन किसी विशेष उद्देश्य को लेकर ही दिया गया है, मन का होना निरुद्देश्य नहीं है। अत: मन की बात भी सुननी चाहिए। यद्यपि मन को अनियन्त्रित होने की छूट नहीं होनी चाहिए। मन सम्पूर्णता बोधक ईश्वर का ही एक अंग है किन्तु वह अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। मन को न तो बाँधना है और न अनियन्त्रित छोड़ना है।

विशेष-

1. लेखक की मन के बारे में गम्भीर आध्यात्मिक दृष्टि का परिचय मिलता है।
2. मन का होना निष्प्रयोज्य नहीं है। उसे रोकना या मनमानी करने की छूट देना-दोनों ही बातें मनुष्य के हित में नहीं हैं।
3. भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त तथा प्रवाहपूर्ण है।
4. शैली गम्भीर विचारविमर्शात्मक है॥

8. क्या जाने उस भोले आदमी को अक्षर-ज्ञान तक भी है या नहीं। और बड़ी बातें तो उसे मालूम क्या होंगी और हम-आप न जाने कितनी बड़ी-बड़ी बातें जानते हैं। इससे यह तो हो सकता है कि वह चूरन वाला.भगत हम लोगों के सामने एकदम नाचीज आदमी हो।

लेकिन आप पाठकों की विद्वान् श्रेणी का सदस्य होकर भी मैं यह स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ कि उस अपदार्थ प्राणी को वह प्राप्त है जो हम में से बहुत कम को शायद प्राप्त है। उस पर बाजार का जादू वार नहीं कर पाता। माल बिछा रहता है और उसका मन अडिग रहता है।

पैसा उससे आगे होकर भीख तक माँगता है कि मुझे लो, लेकिन उसके मन में पैसे पर दया नहीं समाती। वह निर्मम व्यक्ति पैसे को अपने आहत गर्व में बिलखता ही छोड़ देता है। ऐसे आदमी के आगे क्या पैसे की व्यंग्य-शक्ति कुछ भी चलती होगी? क्या वह शक्ति कुंठित रहकर सलज्ज ही न हो जाती होगी? (पृष्ठ सं. 45)

कठिन शब्दार्थ- भोला = सरल, सीधा-सादा। नाचीज = महत्वहीन। श्रेणी = स्तर। अपदार्थ = मामूली। वार = प्रहार, हमला॥ अडिग = दृढ़। निर्मम = निर्दय। आहत = घायल। बिलखता = रोता हुआ। कुंठित = प्रभावहीन।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' से संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से उधृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक के पड़ोस में एक सज्जन रहते हैं। वह चूरन बेचते हैं तथा भगत जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। चूरनवाले भगतजी पर बाजार का जादू नहीं चल पाता है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि उसको यह नहीं पता कि चूरन वाले वह सीधे-सरल भगत जी कुछ पढ़े-लिखे हैं या नहीं। ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें तो उनको पता होंगी ही नहीं। बड़ी-बड़ी बातें जानने वाले लेखक तथा

पाठक की दृष्टि में चूरन वाला भगत एक मामूली आदमी ही है। लेखक स्वयं को पाठकों की तरह ही विद्वानों के स्तर का व्यक्ति मानता है। लेकिन वह यह मानने को तैयार नहीं कि उस मामूली आदमी भगत को वह प्राप्त है जो लेखक के स्तर के लोगों में से बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है।

भगत पर बाजार के आकर्षण का प्रभाव नहीं होता। बाजार में चीजें सजी रहती हैं, पर भगत को वे खरीदारी करने के लिए लालायित नहीं करतीं। उसका मन उनको लेने के लिए नहीं ललचाता। पैसा स्वयं उससे निवेदन करता है, वह उसके पास आना चाहता है परन्तु भगत उसको लेना नहीं चाहता। पैसा का साग्रह निवेदन भी उसको द्रवित नहीं करता।

वह उसको निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर देता है। मैं बड़ा शक्तिशाली हूँ। मैं अत्यन्त आकर्षक हूँ-पैसे का यह घमण्ड उसकी दृढ़ता के आगे टूट जाता है। वह व्याकुल होकर रोता है। ऐसे दृढ़ मनुष्य के सामने धन की व्यंग्य शक्ति प्रभावहीन ही रहती है। वह निस्तेज होकर लज्जित हो जाता है।

विशेष-

1. भगत जी के लिए बाजार का महत्त्व इतना ही है कि वहाँ से उनको अपनी जरूरत की चीजें मिलती हैं। उसमें प्रदर्शित अन्य चीजें उनके लिए बेकार हैं।

2. भगत जी संग्रह के लिए नहीं आवश्यकता पूर्ति भर के लिए धन कमाना पसन्द करते हैं। धन का लालच उनमें नहीं है।

3. खूब पढ़े-लिखे लोगों में भी भगत के जैसे गुण नहीं होते।

4. भाषा सहज विषयानुकूल तथा प्रवाहपूर्ण है। शैली वर्णनात्मक तथा विचारात्मक है।

9. पैसे की व्यंग्य-शक्ति की सुनिए। वह दारुण है। मैं पैदल चल रहा हूँ कि पास ही धूल उड़ाती निकल गई मोटर। वह क्या निकली मेरे कलेजे को कौंधती एक कठिन व्यंग्य की लीक ही आर-से-पार हो गई। जैसे किसी ने आँखों में उँगली देकर दिखा दिया हो कि देखो, उसका नाम है मोटर, और तुम उससे वंचित हो!

यह मुझे अपनी ऐसी विडम्बना मालूम होती है कि बस पूछिए नहीं। मैं सोचने को हो आता हूँ कि हाय, ये ही माँ-बाप रह गए थे जिनके यहाँ मैं जन्म लेने को था। क्यों न मैं मोटरवालों के यहाँ हुआ। उस व्यंग्य में इतनी शक्ति है कि जरा में मुझे अपने संगों के प्रति कृतघ्न कर सकती है। (पृष्ठ सं. 45)

कठिन शब्दार्थ-दारुण = भयंकर। लीक = लकीर। विडम्बना = दुर्भाग्य। कृतघ्न = अहसान फरामोश, आभार न मानने वाला।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक बता रहा है कि धन में प्रबल व्यंग्य शक्ति होती है। वह मनुष्य को तुरन्त प्रभावित करता है। भगत जी जैसे कुछ लोग ही धन की व्यंग्य शक्ति के प्रहार से अपनी रक्षा कर पाते हैं।

व्याख्या-लेखक धन की व्यंग्य शक्ति को उदाहरण देकर समझाता है। वह कहता है कि धन की व्यंग्य शक्ति भयंकर होती है। वह कहता है कि वह रास्ते में पैदल चल रहा है। तभी एक मोटर धूल उड़ाती हुई उसके पास से निकल जाती है।

मोटर का उसके पास से तेजी से निकलना उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे व्यंग्य की एक लकीर उसके हृदय को बेधती हुई आर-पार निकल गई हो। जैसे किसी ने उसकी आँख में उँगली डालकर उसे खोलकर दिखाया हो कि देखो इसको मोटर कहते हैं, यह मोटर तुम्हारे पास नहीं है।

अपने पास मोटर न होना लेखक अपना दुर्भाग्य मानता है। वह तुरन्त सोचता है कि क्या उसे इन्हीं माँ-बाप के घर पैदा होना था। उसका जन्म किसी मोटरवाले के घर क्यों नहीं हुआ। यह व्यंग्य इतना शक्तिशाली है कि व्यक्ति थोड़ी ही देर में अपने सगे-सम्बन्धियों के प्रति कृतज्ञता को भुला देता है और पराया हो जाता है।

विशेष-

1. पैसे में प्रबल व्यंग्य शक्ति होती है। वह मनुष्य को गहराई तक प्रभावित करती है।
2. एक मामूली मोटर लेखक को कृतघ्न बना देती है उसके परिवार के साथ अपनत्व नहीं रह जाता।
3. भाषा गम्भीर तथा विषयानुकूल है।
4. विचारात्मक तथा उद्धरण शैली है।

10. उस बल को नाम जो दो, पर वह निश्चय उस तल की वस्तु नहीं है जहाँ पर संसारी वैभव फलता-फूलता है। वह कुछ अपर जाति का तत्व है। लोग स्पिरिचुअल कहते हैं, आत्मिक, धार्मिक, नैतिक कहते हैं। मुझे योग्यता नहीं कि मैं उन शब्दों में अन्तर देखें और प्रतिपादन करूं।

मुझे शब्द से सरोकार नहीं। मैं विद्वान नहीं कि शब्दों पर अटकें; लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है-वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाय तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की ओर झुकता है। वह अबलता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है। (पृष्ठ सं. 46)

कठिन शब्दार्थ-तल = संसार। वैभव = ऐश्वर्य। अपर = दूसरी, अन्य। स्पिरिचुअल = आध्यात्मिक। प्रतिपादन = स्थापना। सरोकार = मतलब। अटकू = उलझना। तृष्णा = लालच। स्पृहा = कामना, इच्छा। संचय = जोड़ना, इकट्ठा करना। अबलता = निर्बलता। चेतन = बौद्धिकता। जड़ = विचारशून्य।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' से संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। धन में व्यंग्य की प्रबल शक्ति होती है।

किन्तु चूरन वाले भगत जी पर उसका वश नहीं चलता, वह उससे अप्रभावित रहकर बाजार से केवल जरूरत की चीजें ही खरीदते हैं। उनके मन के बल के सामने धन का यह व्यंग्य बल अप्रभावी रहता है।

व्याख्या-लेखक कहता है कि उस बल को किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। परन्तु वह इस संसार की चीज नहीं है। इस संसार में धन-ऐश्वर्य का मान होता है। उसे पाने के लिए लोग ललचाते हैं, कर्म, अकर्म करते हैं।

वह बल किसी अन्य वर्ग से सम्बन्धित है। इस तत्व को आध्यात्मिक कहा जाता है। इसको आत्मिक, धार्मिक, नैतिक आदि नामों से पुकारा जाता है। लेखक शब्दों के झमेले में पड़ना नहीं चाहता वह कहता है कि शब्दों में अन्तर देखने तथा उनको स्थापित करने की योग्यता उसमें नहीं है।

वह विद्वान नहीं है कि शब्दों में उलझे। परन्तु इतनी बात तो निश्चित ही मानने योग्य है कि जिस व्यक्ति में धन के प्रति लालसा और संग्रह की भावना होती है, उसमें उसकी शक्ति की उपेक्षा की ताकत नहीं होती।

अगर इस नैतिक बल को सच मानें तो धन संग्रह की लालसा और ऐश्वर्य पाने की इच्छा से सिद्ध होता है कि वह व्यक्ति कमजोर है। आत्मिक बल के अभाव में कमजोर मनुष्य ही धन के पीछे दौड़ता है। यह मनुष्य की निर्बलता है। यह मनुष्य पर धन की जीत है। यह बौद्धिकता पर विचारहीनता की जीत है।

विशेष-

1. धन के मनुष्य पर प्रभाव को लेकर लेखक ने गम्भीर आत्मचिन्तन किया है।

2. जिनमें नैतिक बल होता है, वही धन के आकर्षण से बच पाते हैं। धन के पीछे दौड़ना मनुष्य की निर्बलता है।

3. भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ अंग्रेजी पर्याय का प्रयोग है। वाक्य छोटे तथा प्रभावशाली हैं।

4. शैली चिन्तन तथा विचारप्रधान है। सूक्ति कथन शैली भी प्रयुक्त हुई है।

11. बाजार से हठ-पूर्वक विमुखता उनमें नहीं है, लेकिन अगर उन्हें जीरा और काला नमक चाहिए तो सारे चौक-बाजार की सत्ता उनके लिए तभी तक है, तभी तक उपयोगी है, जब तक वहाँ जीरा मिलता है। जरूरत भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है। वह जानते हैं कि जो उन्हें चाहिए वह है। जीरा नमक।

बस इस निश्चित प्रतीति के बल पर शेष सब चाँदनी चौक का आमन्त्रण उन पर व्यर्थ होकर बिखरा रहता है। चौक की चाँदनी दाएँ-बाएँ भूखी-की-भूखी फैली रह जाती है, क्योंकि भगत जी को जीरा चाहिए वह तो कोने वाली पंसारी की दुकान से मिल जाता है और वहाँ से सहज भाव में ले लिया गया है।

इसके आगे आस-पास अगर चाँदनी बिछी रहती है। तो बड़ी खुशी बिछी रहे, भगत जी उस बेचारी का कल्याण ही चाहते हैं। (पृष्ठ सं. 46)

कठिन शब्दार्थ-प्रतीति = विश्वास। चाँदनी चौक = दिल्ली का एक पुराना बाजार। चाँदनी = आकर्षण। भूखी-की-भूखी = प्रभाव डालने में अक्षम। पंसारी = मसाले बेचने वाला।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' से संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक का पड़ोसी एक सीधा-सरल चूरनवाला भगत है। वह बाजार की बाहरी और दिखावटी चमक-दमक से प्रभावित नहीं होता। बाजार का

महत्व उसके लिए इतना ही है कि वहाँ से उसको अपनी आवश्यकता की चीजें मिलती हैं। वहाँ पैसे की जो विचारहीन अमानवीय दौड़ है उससे वह अप्रभावित रहता है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि चूरन वाले भगत जी में नैतिक बल है। उनको बाजार की उपयोगिता मालूम है। वह बाजार की जानबूझकर उपेक्षा नहीं करते। उनको जीरा और नमक खरीदना है। वह चौक बाजार में मिलता है।

चौक बाजार उनके लिए तभी तक महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी है जब तक वहाँ ये चीजें मिलती हैं। अपनी आवश्यकता के अनुरूप नमक-जीरा खरीदने के बाद चौक बाजार उनके लिए बेकार हो जाता है। भगत जी को पता है कि उनकी आवश्यकता जीरा और नमक है। उनको यह भलीभाँति विदित है। अतः चाँदनी चौक नामक बाजार का आकर्षण उनको प्रभावित नहीं करता।

भगत जी उस आकर्षक बाजार से गुजरकर पंसारी की कोने की दुकान पर पहुँचते हैं और अपनी जरूरत का जीरा खरीदते हैं। यह एक स्वाभाविक क्रिया है। इसके बाद चाँदनी चौक का आकर्षण, उसमें प्रदर्शित सुन्दर चीजें भगत जी के लिए अस्तित्वहीन हो जाती हैं। वे उन्हें आकर्षित नहीं करतीं। चाँदनी चौक के समस्त वैभव के प्रति तटस्थ रहते हुए वह उसका भला चाहते हैं।

विशेष-

1. बाजार में अपनी आवश्यकता का ज्ञान होने पर जाना ही फिजूलखर्ची से बचा जा सकता है।
2. लेखक ने भगत जी का उदाहरण देकर बाजार की उपयोगिता बताई है।
3. भाषा बोधगम्य तथा विषयानुकूल है।
4. शैली विचारप्रधान है।

12. यहाँ मुझे ज्ञात होता है कि बाजार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति-शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाजार को देते हैं।

न तो वे बाजार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाजार को सच्चा लाभ दे सकते हैं। वे लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं, जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी॥ (पृष्ठ सं. 46)

कठिन शब्दार्थ-सार्थकता = महत्व, उपयोगिता। पर्चेजिंग पावर = क्रय शक्ति। विनाशक = नष्ट करने वाली। शैतानी = दुष्टतापूर्ण। बाजारूपन = विज्ञापन द्वारा अनुपयोगी चीजों को बेचना। कपट = छल, धोखा। सद्भाव = अच्छी भावना। घटी = कमी।

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' से संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। लेखक को मानना है कि बाजार लोगों की जरूरत की चीजें उनको उपलब्ध कराने के लिए है।

यदि वह चीजों का अनुचित विज्ञापन करके उन्हें लोगों को भेड़ने का प्रयास करता है तो वह अपने लक्ष्य से

विरत हो जाता है। जो लोग पैसे के बल पर अनावश्यक चीजें बाजार से खरीदते हैं। वे भी बाजार की मर्यादा भंग करने के दोषी हैं।

व्याख्या-लेखक कहता है कि बाजार जाने वाले को यह ठीक तरह पता होना चाहिए कि उसको किस चीज की जरूरत है, यह जानने वाला ग्राहक ही बाजार को एक महत्वपूर्ण उपयोगी संस्था बनाने में सहायक होता है। जो मनुष्य अपनी आवश्यकता की चीजों का सही ज्ञान नहीं रखता और बाजार जाकर अपनी क्रय शक्ति का घमण्ड दिखाता है तथा अनाप-शनाप गैर जरूरी चीजें खरीद डालता है।

वह बाजार की उपयोगिता भंग करके उसको हानि पहुँचाता है। उसके कारण बाजार को एक विनाशकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह शक्ति ग्राहक के शोषण की शक्ति होती है। इसको व्यंग्य शक्ति तथा दुष्टतापूर्ण शक्ति भी कह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति बाजार से लाभ नहीं उठा पाते।

ने इस तरह के ग्राहकों के कारण बाजार एक उद्देश्यपूर्ण संस्था ही बना रह पाता है। ये लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं। अर्थात् बाजार को चीजों के अनुचित प्रदर्शन और विज्ञापन द्वारा उन्हें खरीदने के लिए ग्राहकों को बाध्य करने का स्थान बना देते हैं।

ऐसे व्यक्तियों के कारण बजार ग्राहक को सामान उपलब्ध कराने के उपयोगी स्थल के बजाय उनके शोषण का स्थान बन जाता है। उनके कारण बाजार में छल-कपट बढ़ता है। ठगी बढ़ती है। विक्रेता और क्रेता के बीच का सद्भाव नष्ट हो जाता है। दोनों एक-दूसरे पर अविश्वास करते हैं और एक-दूसरे को ठगने का प्रयास करते हैं।

विशेष-

1. बाजार की उपयोगिता ग्राहक की जरूरत का सामान उसको उपलब्ध कराने में है।
2. ग्राहकों को ललचाकर सामान बेचना उनको ठगना है। ग्राहक द्वारा पैसे के बल पर अनावश्यक चीजें खरीदना अनुचित है। दोनों ही बाजार की सार्थकता को नष्ट करते हैं।
3. भाषा बोधगम्य तथा प्रवाहपूर्ण है।
4. शैली विचारात्मक है।

13. इस सद्भाव के ह्रास पर आदमी आपस में भाई-भाई और सुहृद और पड़ोसी फिर रह हीं नहीं जाते हैं और आपस में कोरे ग्राहक और बेचक की तरह व्यवहार करते हैं। मानो दोनों एक-दूसरे को ठगने की घात में हों। एक की हानि में दूसरे को अपना लाभ दीखता है और यह बाजार का, बल्कि इतिहास का सत्य माना जाता है।

ऐसे बाजार को बीच में लेकर लोगों की आवश्यकताओं का आदान-प्रदान नहीं होता, बल्कि शोषण होने लगता है। तब कपट सफल होता है, निष्कपट शिकार होता है। ऐसे बाजार मानवता के लिए बिडम्बना हैं और जो ऐसे बाजार का पोषण करता है, जो उसका शास्त्र बना हुआ है, वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा है। वह मायावी शास्त्र है। वह अर्थशास्त्र अनीति-शास्त्र है। (पृष्ठ सं. 46-47)

कठिन शब्दार्थ-हास = कमी। सुहृद = मित्र। सद्भाव = अच्छी भावना। कोरे = केवल, मात्र। ग्राहक = खरीदने वाला। बेचक = बेचने वाला। घात = चोट पहुँचाना। शोषण = धन छीनना, रुपये ऐंठना। शिकार

होना = ठगी का लक्ष्य बनना। पोषण करना = पालन, संरक्षण करना। शास्त्र = विद्या विज्ञान। सरासर = पूरी तरह। औंधा = उल्टा, उद्देश्य के विपरीत काम करने वाला। मायावी = कपटी। अर्थशास्त्र = धन की विद्या। अनीतिशास्त्र = नीति अर्थात् उचित नियमों के विपरीत ज्ञान सिखाने वाली विद्या॥

सन्दर्भ तथा प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'सृजन' में संकलित 'बाजार दर्शन' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध से उद्धृत है। इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं।

जैनेन्द्र का मानना है कि जब विक्रेता अनावश्यक चीजें ग्राहकों को बेचकर अनुचित लाभ कमाते हैं तथा ग्राहक अपनी क्रय शक्ति दिखाकर फिजूल की चीजें खरीदते हैं तो बाजार का उद्देश्य प्रभावित होता है और वह आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली संस्था के स्थान पर शोषण का माध्यम बन जाता है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि विक्रेता तथा क्रेता के अनुचित आचरण के कारण बाजार में सद्भाव नष्ट हो जाता है। विक्रेता ग्राहक से अनुचित मुनाफा कमाना चाहता है और ग्राहक भी विक्रेता पर विश्वास नहीं करता। दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति कपट की भावना रहती है।

दोनों एक-दूसरे को ठगना चाहते हैं। ऐसी दशा में उनमें एक ही रिश्ता बन जाता है। वह रिश्ता है केवल ग्राहक और विक्रेता का। उनका आपसी व्यवहार इसी पर केन्द्रित हो जाता है। दोनों एक-दूसरे को ठगने का प्रयत्न करते हैं। ग्राहक को हानि पहुँचाकर विक्रेता तथा विक्रेता को धोखा देकर ग्राहक लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं।

इस व्यवहार को बाजार का सत्य ही नहीं इतिहास का सत्य भी माना जाता है। इस प्रकार का बाजार आवश्यकताओं की माँग पूर्ति का स्थान नहीं रह जाता। वह शोषण का स्थान बन जाता है। वह छलपूर्ण व्यवहार करने वाला ठग बन जाता है।

ऐसे बाजार मनुष्यता के दुर्भाग्य को जन्म देते हैं। अर्थशास्त्र लाभ हानि की गणना करके माँग पूर्ति का सिद्धान्त सुझाकर बाजार की शोषक प्रणाली को मजबूत बनाता है। लेखक की दृष्टि में वह अर्थशास्त्र है ही नहीं। वह उल्टी सीख देने वाला और छल-कपट सिखाने वाला शास्त्र है। उसको अर्थशास्त्र नहीं अनर्थ शास्त्र कहना ठीक है। वह नीति की नहीं अनीति की शिक्षा देने वाला शास्त्र है।

विशेष-

1. बाजार लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए गठित हुआ है। धनोपार्जन बाजार का उद्देश्य नहीं है।

2. बाजार में मुनाफा कमाने की नीति सिखाने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है। किन्तु बाजार के उद्देश्य को क्षति पहुँचाकर वह अनर्थशास्त्र बन जाता है।

3. भाषा तत्सम शब्द प्रधान है तथा उसमें प्रवाह है।

4. शैली विचारात्मक है।